कृषि क्षेत्र में श्रमिक
एक बढ़ती चुनौती





सारांश

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि क्षेत्र खाद्य सुरक्षा और विकास जैसे राष्ट्रीय लक्ष्यों का केन्द्र बिन्दु ही, साथ ही देश के सर्वाधिक श्रमिक इस क्षेत्र में संलग्न है पिछले 5 वर्षों में कृषि क्षेत्र की विकास दर लगभग 4.1 प्रतिशत रही है।

आर्थिक विकास के फलस्वरूप कृषि श्रमिकों का दूसरे क्षेत्र में जाना स्वाभाविक रूझान है परन्तु भारत में यह रूझान न केवल पूरे रोजगार में कृषि श्रमिकों के अनुपात में कमी दर्शा रहा है बल्कि कृषि में संलग्न पूर्ण श्रमिकों की संख्या में भी भारी कमी दर्शाता है दो कलावधियों 2004–05 और 2011–2012 का तुलनात्मक अध्ययन इंगित करता है कि देश में कुल श्रमिकों की संख्या बढ़ी है किन्तु कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की संख्या 3.57 करोड़ कम हुई, जो कि कुल कार्य बल में कृषि का अनुपात 56.7 प्रतिशत से घटकर 48.8 प्रतिशत रह गया। इससे यह स्पष्ट है कृषि क्षेत्र के कार्य बल में अनुपातन कम लोग जुड़े और श्रमिकों का वैकल्पिक रोजगार का रूझान रहा।

कृषि जगत में कार्यः कई श्रमिक सम्बन्धित रोजगार में कमी और अन्य वैकल्पिक क्षेत्र अधिक अवसर और पारिश्रमिक मिलने के कारण दूसरे रोजगार अपना रहे हैं जिससे कृषि में श्रमिकों की उपलब्धता का हुई और परिणामस्वरूप खेती की लागत में काफी बढोतरी हुई है। अतः एसे कारक जो कृषि से अन्य क्षेत्र में श्रम के बहाव को प्रोत्साहित करते हैं, उदाहरणतः मनरेगा जैसी योजनाओं में सुधार लाने पर विचार करने की आवश्यकता है।

उत्पादन कारक

- **तत्काल प्रभावी उपाय:** मशीनीकरण, श्रम निर्भरता कम करने वाले बीज प्रौद्योगिकी और खरपतवार नाशक रसायन का उपयोग
- **दीर्घ कालीन उपाय:** अनुसंधान और प्रौद्योगिकी द्वारा कृषि की उत्पादकता और आमदानी में वृद्धि बीज प्रौद्योगिकी, कृषि सघनीकरण और क्रमबद्ध फसल पद्धतियों का विकास

उत्पाद कारक

- कृषि व्यवसाय के विभिन्न घटकों में तारत्मय, कान्ट्रैक्ट फार्मिंग, सहकारिता और कृषक इक्विटी भागीदारी जैसे उपायों से सहायता मिल सकती है।

केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा कृषि को अधिक उत्पादक और लाभप्रद बनाने के लिए यह अपेक्षा होगी की ढांचागत आधारभूत सुधारों को तेज करें, उदाहरणतः जमीन के पट्टेदारी के नियमों का सरलीकरण, कृषि उत्पाद मंडी समीतियों में सुधार कृषि विपणन में निजी क्षेत्र की भागीदारी मशीनीकरण सेवाओं को प्रोत्साहन इत्यादि इस दिशा में अच्छी पहल होंगे। इन प्रयासों के साथ भी ज़रूरी है कि केन्द्र शासन महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना में सुधार लाए और कृषि क्षेत्र के सभी अनुभागियों में बेहतर समन्वय के द्वारा अधिक निवेश की पहल करें

कृषि क्षेत्र में श्रमिक
एक बढ़ती चुनौती



विषय प्रवेश

कृषि और भारतीय अर्थतंत्र में इसका महत्व

कृषि के महत्व पर जितना कहा जाए कम ही होगा। हालाँकि भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि की हिस्सेदारी में गिरावट आती गई है तथापि कृषि और वानिकी (फॉरेस्ट्री) एवं मछुआगिरी (फिशिंग) (परन्तु खनन और उत्खनन को छोड़कर) जैसे कृषि से सबंधित क्षेत्रों का भारत के जीडीपी में अंशदान करीब 14 प्रतिशत है, निर्यात में इसकी हिस्सेदारी करीब 11 प्रतिशत है और यह हमारी आधी आबादी की आजीविका का सहारा है। इसके अलावा, यह अनेक उद्योगों के लिए कच्चे माल का स्रोत भी है।

खाद्य सुरक्षा, 12वीं पंचवर्षीय योजना में औसत 8 प्रतिशत जीडीपी वृद्धि दर और वर्तमान न्यून ग्रामीण आय में वृद्धि जैसे अनेक लक्ष्यों को हासिल करने के उद्देश्य से कृषि विकास दर को उच्चतर स्तर पर ले जाना जरूरी है।

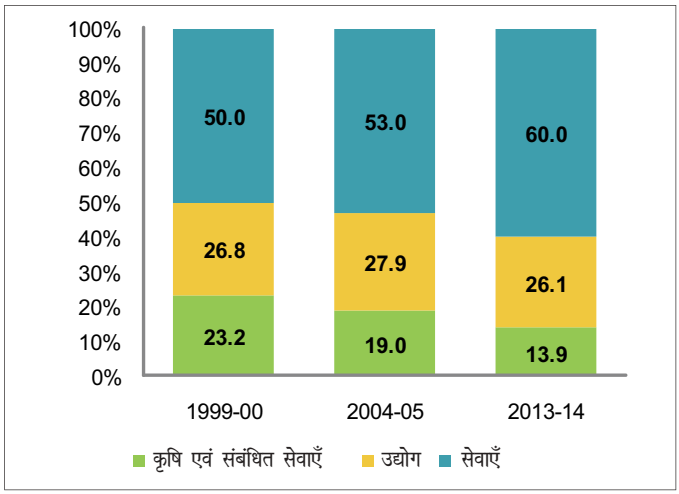
सापेक्षिक योगदान का विचार किए बगैर भी 2013–14 तक विगत पाँच वर्षों में कृषि क्षेत्र का औसत वृद्धि दर 401 प्रतिशत रहा है (2013–14 के लिए अग्रिम अनमान के आधार पर)। 12वीं पंचवर्षीय योजना में भी समान वृद्धि दर की कल्पना की गई है।

वैश्विक स्तर पर भारतीय कृषि की स्थिति बेहतर हुई है। भारत विश्व में दूध और दलहन का सबसे बड़ा और चावल, गेहूँ, फलों, सब्जियों, गन्ना आदि का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। वर्ष 2011–12 में भारत का खाद्यान उत्पादन 250 मिलियन टन से ज्यादा हुआ। चावल का उत्पादन 100 मिलियन टन और गेहूँ का उत्पादन 90 मिलियन टन से ज्यादा हुआ।

2011 के आँकड़ों के अनुसार भारत की कृषि योग्य भूमि 159.7 मिलियन हेक्टेयर (394.6 मिलियन एकड़) है जो विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरा सबसे बड़ा रकबा है। भारत में 82.6 मिलियन हेक्टेयर (215.6 मिलियन एकड़) में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है जो विश्व में सबसे ज्यादा है।

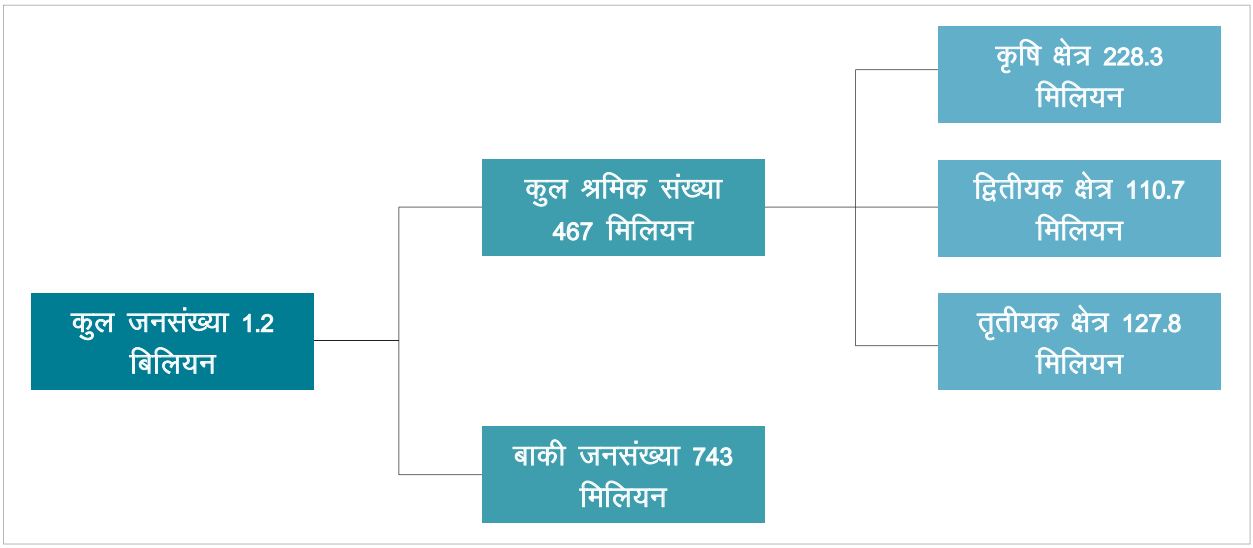
जीडीपी में इसके सापेक्ष हिस्से में गिरावट के बावजदू अनेक नवोन्मेशी कदम उठाए जा रहे हैं और विगत कुछ वर्षों के दौरान इस क्षेत्र का प्रदर्शन कुल मिलाकर अच्छा रहा है। तथापि खेतिहर मजदूरों की कमी एक बड़ी बाधा है जो निकट भविष्य में विकराल रूप ले सकती है।

स्थिर मूल्य (2004–05) पर जीडीपी का हिस्सा



स्रोतः योजना आयोग, फिक्की का अध्ययन

कुल श्रमिक बनाम खेतिहर श्रमिक (2011–12)



कृषि से किसी परिवार के केवल वयस्क पुरुषों को ही नहीं बल्कि स्त्रियों को भी रोजगार मिलता है। स्त्रियाँ प्रमुख अनाजों और मोटे अनाजों की पैदावार, खेत तैयार करने, बीजों के चुनाव और बिचड़ों के उत्पादन, बुवाई, खाद पटाई, खर–पतवार निकालने, रोपनी, दौनी, ओसौनी और फसल कटाई में व्यापक तौर पर काम करती हैं।

समग्र सामाजिक–आर्थिक विकास में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए कृषि में तीव्र, संवहनीय और विविधतापूर्ण वृद्धि देश की मुख्य प्राथमिकता बनती है। कृषि में घटती श्रमशक्ति के माहौल में पैदावार या उत्पादकता बढ़ाना वृद्धि का मुख्य उपाय है जिसकी गति तेज करने की जरूरत है। विकसित और अन्य विकासशील देशों के खेतों से अनाज की अपेक्षित सर्वश्रेष्ठ पैदावार की तुलना में भारत में अनाज की पैदावार अभी भी महज 30 प्रतिशत से 60 प्रतिशत के बीच है। उन्नत बीजों के विभिन्न प्रकार, व्यापक विस्तारित सेवाओं और खेती का मशीनीकरण, ये तीन महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जिनके लिए हस्तक्षेप और ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।



अध्याय 1



कृषि संबंधी श्रमिक संख्याः एक विहंगावलोकन

कृषि संबंधी श्रमिक संख्या : एक विहंगावलोकन

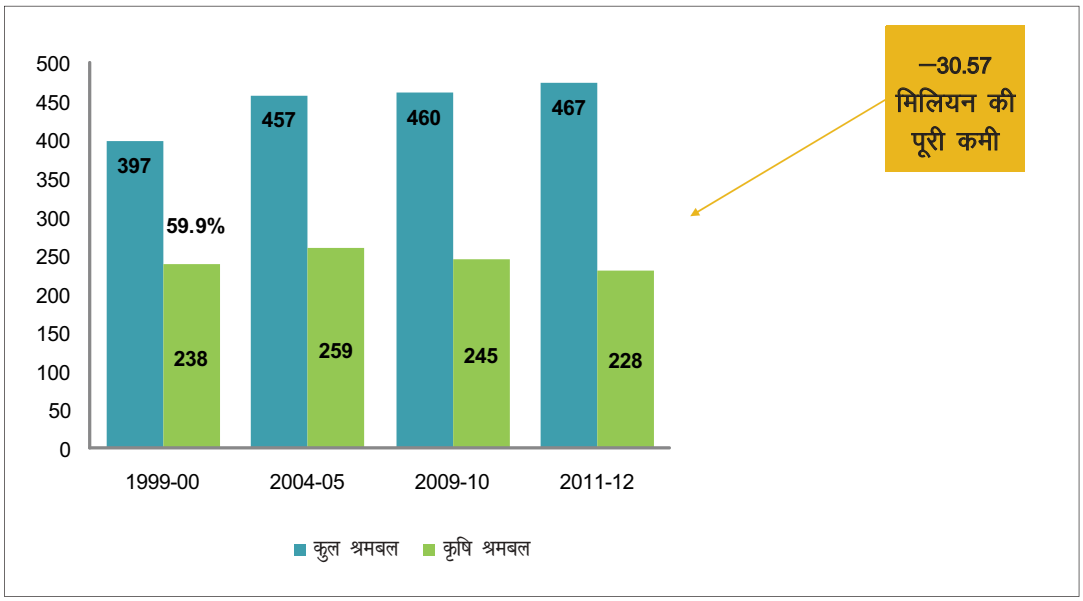
रोजगार के आँकड़े नैशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन (एनएसएसओ) से प्राप्त होते हैं जो रोजगार और बेरोजगारी के चक्र के आधार पर होते हैं। प्रयुक्त आँकड़ें 55वें चक्र (1999–2000), 61वें चक्र (2004–05), 66वें चक्र (2009–10) और 68वें चक्र (2011–12) से संबंधित हैं।

आँकड़ों से पता चलता है कि 2004–05 से भारत में समग्र रोजगार वृद्धि कमजोर चली आ रही है। 2004–05 के बाद से श्रमिक संख्या से जुड़ने वाले लोगों की संख्या औसतन महज 2 मिलियन थी जबकि इसकी तुलना में 1999–2000 और 2004–05 के बीच श्रमिक संख्या में हर साल लगभग 12 मिलियन लोग जुड़ते थे।

तथापि, 2004–05 के बाद से गैर–कृषि रोजगार से हर साल दरअसल लगभग 6 मिलियन लोग जुड़ते रहे थे क्योंकि उसके बाद से कृषि में संलग्न श्रमिकों की शुद्ध संख्या में गिरावट होने लगी जो लगातार जारी है। 2004–05 और 2011–12 के बीच कृषि में श्रमिक संख्या में लगभग 30.57 मिलियन तक की गिरावट आई, हालाँकि कुल श्रमिक संख्या में बढ़ोतरी हुई। यह पहली ऐसी अवधि थी जब खेती में शुद्ध संख्या में गिरावट दर्ज की गई।

ऐसा देखा गया है कि समय के साथ जैसे–जैसे आर्थिक प्रगति विकास की दिशा में बढ़ती है, वैसे–वैसे श्रमिकबल में अर्थतंत्र के प्राथमिक क्षेत्र से बाहर होने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। इस विश्वव्यापी अनुभवजन्य तथ्य के अनुरूप भारत में भी कृषि में संलग्न लोगों की संख्या में 2011–12 के 49 प्रतिशत से 1999–2000 के 60 प्रतिशत तक लगातार गिरावट आती गई है।

कृषि में संलग्न लोग और समग्र रोजगार



स्रोत : एनएसएसओ, फिक्की का अनुसंधान

आम तौर पर अर्थव्यवस्था के मजबूत होने के साथ–साथ अतिरिक्त खेतिहर मजदूरों का कम उत्पादकता वाले कृषि क्षेत्र से विनिर्माण और सेवाओं जैसे अधिक उत्पादकता वाले क्षेत्रों में और इस तरह ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों एव कम मजदूरी से अधिक मजदूरी वाले क्षेत्रों में गमन होने लगता है। अर्थव्यवस्था वृद्धि की गति में तेजी के साथ इस गमन की गति भी बढ़ती है जिससे गैरकृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ जाते हैं। गोल्डमैन सैश (2014) के आकलन के अनुसार श्रमिकों की उत्पादकता कृषि क्षेत्र की तुलना में औद्योगिक क्षेत्र में 4 गुणा और सेवा क्षेत्र में 6 गुणा ज्यादा होती है। उच्चतर उत्पादकता का अर्थ है उच्चतर मजदूरी। इसलिए, कृषि छोड़कर जाना स्वाभाविक है। बुनियादी क्षेत्रों में प्रौद्योगिक उन्नति से अनेक मामलों में कम श्रमिक और उच्चतर पूँजी निवेश का माहौल बनता है और इस तरह के स्थानांतरण का यह भी एक कारण है।

भारत में भी श्रमिक गतिशीलता में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। लेकिन इसका असर केवल कुल रोजगार में कृषि की घटती हिस्सेदारी तक ही सीमित नहीं है बल्कि इससे कृषि क्षेत्र के रोजगार में लगे लोगों की कुल संख्या में भी उल्लेखनीय गिरावट आई है। दो कालखण्डों, 2004–05 और 2011–12 की तुलना से पता चलता है कि देश में कुल कामगारों की संख्या में जहाँ लगभग 10 मिलियन की बढ़ोतरी हुई है वहीं कृषि में लगे श्रमिकों की संख्या में 30.57 मिलियन की गिरावट दर्ज की गई है। इस प्रक्रिया में उसी अवधि के दौरान कुल श्रमिकों की तुलना में कृषि क्षेत्र का हिस्सा 56.7 प्रतिशत से घटकर 48.8 प्रतिशत पर आ गया है (प्रमुख और आनुशांगिक गतिविधियों के विचार से)। इससे न केवल यह पता चलता है कि कृषि से जुड़ने वाले श्रमिकों की संख्या कम हो रही है बल्कि अन्य क्षेत्रों की ओर सकल पलायन की स्थिति भी स्पष्ट होती है।

वर्ष 2001 से 2011 के बीच भारत की जनसंख्या में 181.5 मिलियन की वृद्धि हुई जिसमें आधी वृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों में थी। चूँकि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि मुख्य आधार है, इसलिए इससे तो यही लगता है कृषि के लिए पर्याप्त श्रमिक उपलब्ध होने चाहिए। इसके सिवा, भारतीय कृषि क्षेत्र में काफी हद तक छद्म बेरोजगारी व्याप्त है। यानी, अगर कृषि में श्रमिकों की संख्या कुछ कम हो भी जाए तो उत्पादन और पैदावार में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इन दोनों से माना जा सकता है कि कृषि में श्रमिक उपलब्धता की कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यही आम धारणा रही है।

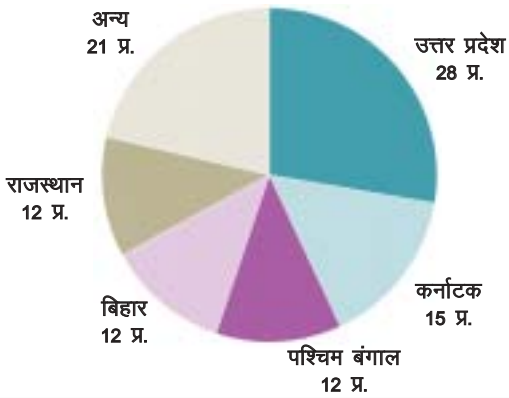
दूसरी ओर खासकर अनाज के पदावार में विगत कई वर्षों में बढ़ोतरी होती रही है। कृषि मंत्रालय के आर्थिक एवं सांख्यिकी निदशालय के आकड़ों के अनुसार 1999–2004 के बीच अनाज की पैदावार की चक्रित वार्षिक वृद्धि दर (सीएजीआर) 0.1 प्रतिशत थी लेकिन इसमें 2004–2009 के बीच 20.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। तर्क दिया जाता है कि अगर कृषि श्रमिकों की कमी होती तो पैदावार में बढ़ोतरी संभव नहीं होती।

तथापि, तथ्य यही है कि कृषि से काफी व्यापक और तीव्र पलायन हुआ है। इसका असर भी दिखाई देने लगा है क्योंकि कृषि क्षेत्र में सकल श्रम माँग कम करने के लिए फिलहाल श्रमिकों की कमी की भरपाई के पर्याप्त उपाय नहीं हो रहे हैं। नतीजतन, भारत के अनेक राज्यों के प्राथमिक क्षेत्र में श्रमिकों की भारी कमी और खेतिहर मजदूरी में उछाल देखा जा रहा है जिससे किसानों के मुनाफे पर बुरा असर हो रहा है।

कृषि श्रमिक की उपलब्धता का राज्यवार और फसलवार प्रभाव

यह कमी सभी बड़े राज्यों में समान कमियों के सकल प्रभाव के कारण है। इस कमी में केवल पाँच राज्यों उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, बिहार और राजस्थान का योगदान करीब 79 प्रतिशत है जबकि बाकी राज्यों का 21 प्रतिशत।

कृषि श्रमिक बल में राज्यों का अंशदान कमी : 2004–05 से 2011–12

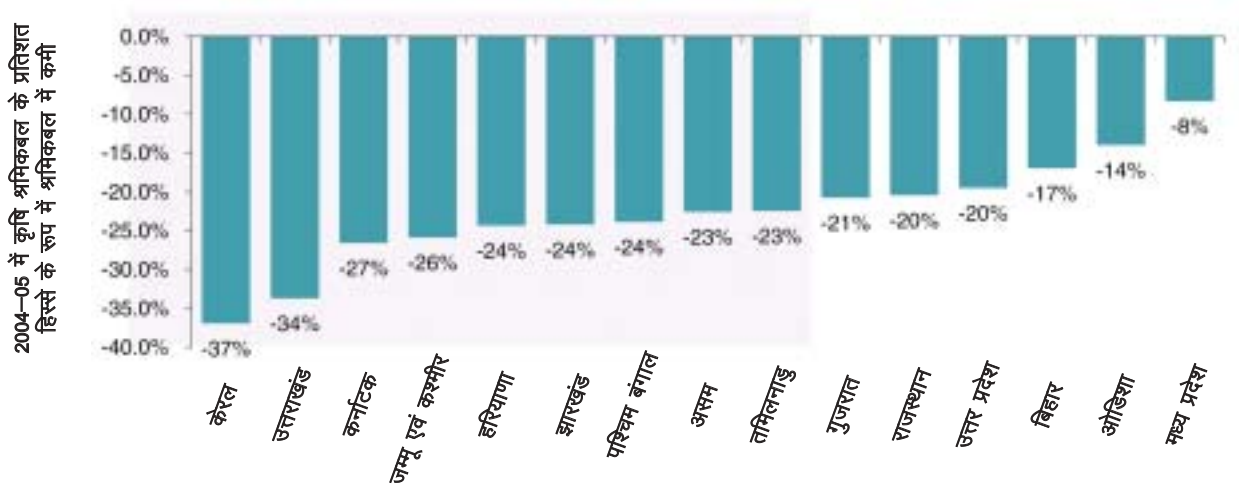


राज्य	कृषि श्रमिक (मिलियन)		कमी (मिलियन)
	2004-05	2011-12	
उत्तर प्रदेश	43.30	34.83	8.47
कर्नाटक	17.60	12.91	4.69
पश्चिम बंगाल	15.50	11.79	3.71
बिहार	21.30	17.67	3.63
राजस्थान	17.40	13.83	3.56
अन्य	143.83	137.31	6.52
कुल योग	**258.93**	**228.36**	**30.57**

स्रोतः एनएसएसओ रिपोर्ट्स 61वाँ एवं 68वाँ चक्र। भारत की जनगणना, केपीएमजी विश्लेषण

राज्यों के विश्लेषण (निचले ग्राफ में) से पता चलताा है कि केरल, उत्तराखंड, कर्नाटक आदि राज्यों में हालाँकि कमी का पैमाना बड़ा नहीं है तथापि इसमें इन राज्यों में 2004–05 में मौजूद कृषि श्रमिकबल का एक बड़ा हिस्सा शामिल है। इस विश्लेशण से यह स्पष्ट है कि 2004–05 और 2011–12 के बीच इन सभी राज्यों में कृषि श्रमिकबल का एक बड़ा हिस्सा कृषि से बाहर हो गया है।

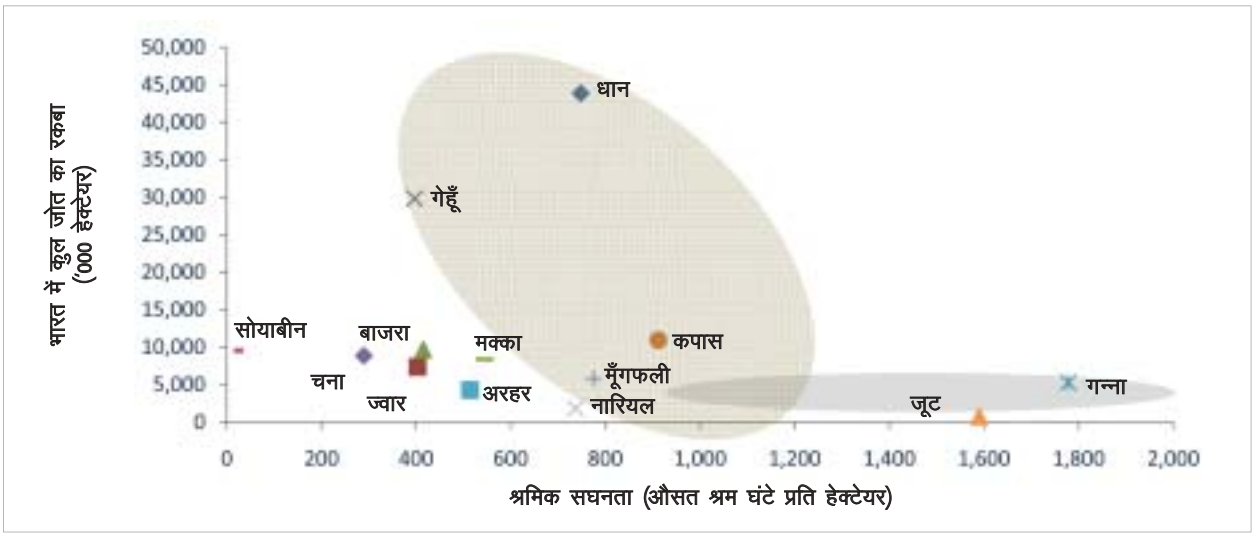
2004–05 और 2011–12 (आधार वर्ष 2004–05) के बीच कृषि श्रमिकबल में बदलाव



स्रोतः एनएसएसओ रिपोर्ट्स, भारत की जनगणना, केपीएमजी विश्लेषण

समग्र फसलों के लिए श्रम–प्रधानता

हालाँकि श्रमिकों की कमी से कृषि क्षेत्र प्रभावित होता है, तथापि यह प्रभाव कतिपय ऐसे फसलों के मामले में ज्यादा गंभीर होता है जिनके लिए प्रति इकाई खेती में ज्यादा श्रम घंटे की आवश्यकता होती है और जो देश में व्यापक पैमाने पर उगाई जाती हैं। इन दो घटकों को मिलाकर देखने से पता चलता है कि धान, गेहूँ, कपास, गन्ना और मूँगफली जैसी फसलें श्रमिक अल्पता से सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं (जैसा कि नीचे ग्राफ में दिखाया गया है)।



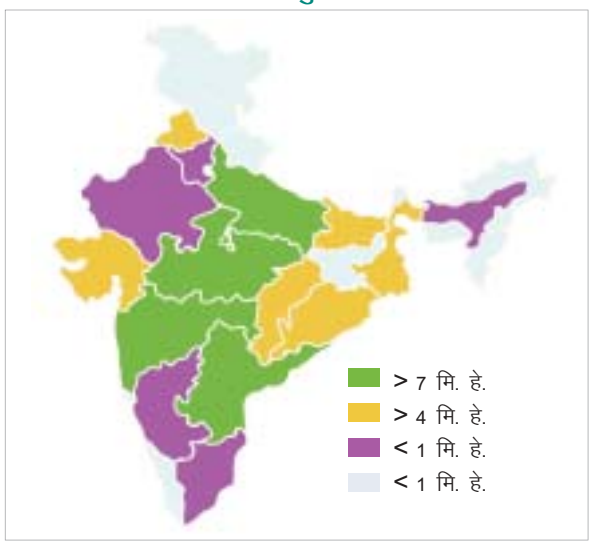
स्रोतः कृषि एवं सहकारिता विभाग, केपीएमजी विश्लेषण
नोट : फसलों से संबंधित श्रम घंटे सभी राज्यों के औसत पर है, आँकड़े 2011 के हैं।

सभी राज्यों के लिए पाँच प्रमुख फसलों का विस्तार और व्यापकता का विष्लेशण किया गया है।

- आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में इन पाँच प्रमुख फसलों का रकबा सबसे ज्यादा है जिनमें सभी मामलों में धान का हिस्सा सबसे ज्यादा है। महाराष्ट्र में कपास का रकबा भी अधिक है जबकि आंध्र प्रदेश में मूँगफली और कपास दोनों का।
- बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, ओडिशा, पंजाब और पश्चिम बंगाल का स्थान दूसरी श्रेणी में है। इन राज्यों में से पंजाब में गेहूँ का रकबा ज्यादा है जबकि गुजरात में कपास और मूँगफली का।

इन राज्यों में श्रमिक की कमी से उत्पादन प्रभावित होने की आशंका है और इनकी खेती में श्रम–प्रधानता कम करने के लिए पर्याप्त कदम उठाने की आवश्यकता है।

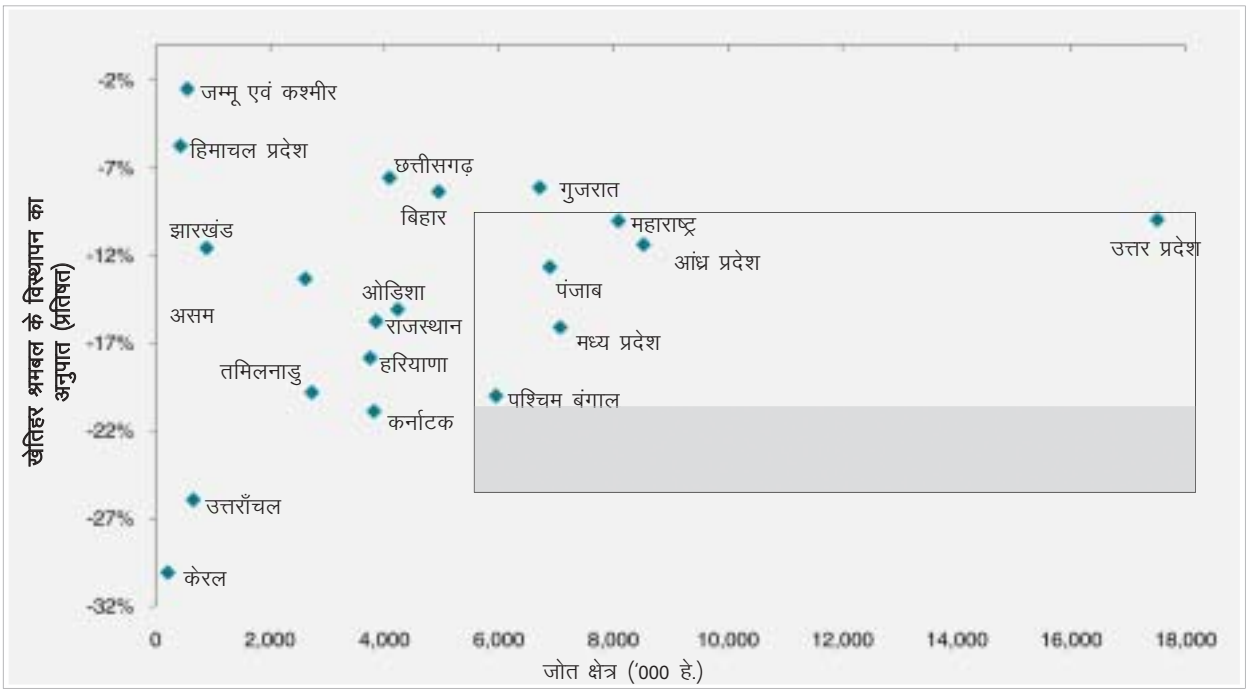
धान, गेहूँ, मूँगफली, कपास और गन्ने का कुल रकबा



स्रोतः कृषि एवं सहकारिता विभाग, केपीएमजी विश्लेषण

नीचे दिए गए ग्राफ में धान, गेहूँ, गन्ना, मूँगफली और कपास जैसे फसलों के जोत क्षेत्र के साथ वर्ष 2004–05 और 2011–12 के बीच विभिन्न राज्यों में हुए खेतिहर श्रमिकों के स्थानान्तरण के अनुपात का खाका खींचा गया है। इस खाका से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदश और पश्चिम बंगाल ऐसे राज्य हैं जहाँ श्रम–प्रधान जोत क्षेत्र काफी अधिक है और श्रमिक उपलब्धता में उल्लेखनीय गिरावट भी आई है। इन राज्यों में आगे चलकर श्रमिक समस्याएँ बढ़ने की संभावना अधिक है और इस पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है।

श्रम–प्रधान फसलों का रकबा बनाम कृषि से श्रमिकों का विस्थापन



फसल आवृत्तिचक्र के विभिन्न चरणों में औसत श्रमिक आवश्यकता

	धान	गन्ना	मूँगफली	कपास
खेत की तैयारी, बुवाई, रोपनी,				
खर–पतवार निकालना, खाद डालना, सिंचाई				
अन्य क्रिया–कलाप				
कटाई				

25 श्रमदिवस प्रति हेक्टेयर	25–50 श्रमदिवस प्रति हेक्टेयर	50–75 श्रमदिवस प्रति हेक्टेयर	75 श्रमदिवस प्रति हेक्टेयर

स्रोतः श्रमिक अल्पता–कृषि पर इसकी विशालता और प्रभाव, सी. प्रभाकर, के. सीता देविया एवं एस.सेल्वम

अनेक नई रिपोर्टों और लोक साक्ष्यों से विभिन्न राज्यों में इन प्रमुख फसलों में कुछ पर श्रमिक अल्पता के प्रभाव का पता चलता है। उदाहरण के लिए, आँध्र प्रदेश में, जहाँ 2004–05 और 2011–12 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 5 प्रतिशत कृषि श्रमबल का अन्य क्षेत्रों में पलायन हुआ, कथित तौर पर चावल की खेती में उल्लेखनीय श्रमिक अल्पता देखी गई। इस राज्य में लगभग 4.5 मिलियन हेक्टेयर में चावल की और लगभग 1.5 मिलियन हेक्टेयर से अधिक में कपास एवं मूँगफली की खेती होती है। खेतिहर मजदूरों की कमी के कारण किसानों ने चावल की सघन खेती और मशीनीकरण का सहारा लिया है। निम्नलिखित समाचार से इसका पता चलता है।

पश्चिम गोदावरी, आँध्र प्रदेश में श्रमिक की कमी से चावल की पैदावार प्रभावित

पश्चिम गोदावरी जिले में 0.25 मिलियन हेक्टेयर में धान की खेती होती है जो उद्यानकृषि संबंधी ताड़, आम, गन्ना, तम्बाकू और मिर्ची जैसी कतिपय अन्य नगदी फसलों के साथ जिले की प्रमुख फसल है। इस जिले में श्रमिकों की कमी की समस्या रही है जिसके समाधान के लिए प्रशासन द्वारा श्रमिकों की जरूरत कम करने के उद्देष्य से मशीनीकरण को बढ़ावा दिया गया।

जिला प्रशासन ने जिले के अंदर मशीनीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विशेष योजना के तहत राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) से सहयोग लेकर अनुदान के सहारे किसानों को पावर टिलर, कम्बाइंड हार्वेस्टर, ट्रांस्प्लांटर और अन्य उपकरणों का वितरण किया। इन मशीनों के प्रयोग से श्रमिकों की आवश्यकता में महत्वपूर्ण कमी आने और खेतिहर मजदूरों की कमी से परेशान किसानों को जरूरी सहयोग मिलने की उम्मीद है।

आँध्र प्रदेश सरकार ने 2013–14 के बजट में राज्य में खेती में मशीनीकरण के लिए 2,500 करोड़ रुपये का आबंटन किया था।

स्रोतः द हिन्दू – दिसम्बर 2011

इसी प्रकार के प्रभाव अन्य श्रम–प्रधान फसलों के संदर्भ में भी देखे गए हैं। गुजरात का ही उदाहरण लें, जहाँ वर्ष 2011 में गन्ने की कटाई के लिए श्रमिकों की कमी के कारण किसानों को अपनी पैदावार नष्ट कर देनी पड़ी थी।

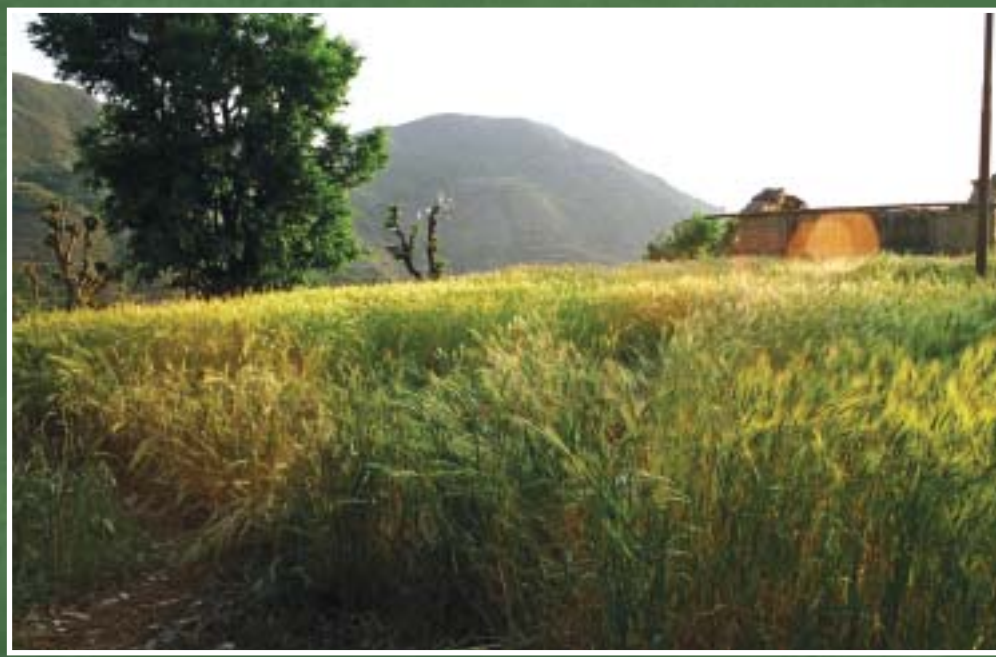
गुजरात में गन्ना कटाई पर श्रमिक अल्पता का प्रभाव

गुजरात के सूरत जिले में कटाई के लिए श्रमिकों की कमी के कारण किसानों द्वारा करीब 0.14 मिलियन हेक्टेयर में खड़ी गन्ने की फसल नष्ट कर दी गई। गन्ने की कटाई के लिए विशेष कुशलता की आवश्यकता होती है। परांपरागत तौर पर पड़ोसी महाराष्ट्र के धुलिया और जलगाँव क्षेत्रों से दक्षिण और मध्य गुजरात में हर साल प्रवास करने वाले खेतिहर मजदूरों द्वारा यह काम किया जाता रहा है। ऐसे प्रवासी मजदूरों की कमी के कारण अनेक किसानों ने या तो ट्रैक्टरों का सहारा लिया या फसल को जला दिया ताकि खड़ी फसल को सड़ने से रोका जा सके और नई फसल की बुवाई के लिए खेत खाली किया जा सके। परिणामस्वरूप किसानों और कारखानों दोनों ही को भारी नुकसान उठाना पड़ा।

स्रोतः इंडियन एक्सप्रेस जून 2011



अध्याय 2



कृषि से विस्थापन का विवरण

भारतीय कृषि में रोजगार को प्रभावित करने वाले सामान्य कारण

अर्थतंत्र में जैसे–जैसे मजबूती आती है, अतिरिक्त श्रमिकों का न्यून उत्पादकता वाले कृषि क्षेत्र से उच्चतर उत्पादकता वाले निर्माण और सेवा क्षेत्र की ओर स्वाभाविक झुकाव होता जाता है क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों में उत्पादकता और मजदूरी अपेक्षाकृत ज्यादा होती हैं। गाँव से शहर की ओर कृषि से अलग होने की गति अर्थतंत्र के विकास के साथ बढ़ती जाती है। इन परिघटना की विस्तृत व्याख्या आवश्यक है क्योंकि इसके पीछे और भी कई कारण होते हैं।

श्रमिकों के कृषि क्षेत्र से विस्थापन के दो महत्वपूर्ण कारण हैं। पहला, कारण है "आकर्षण"। अर्थतंत्र के तेज विकास से गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार के ज्यादा अवसर पैदा होते हैं। इसके फलस्वरूप श्रमिकों में कृषि को छोड़कर उच्चतर उत्पादकता और उच्चतर मजदूरी वाले निर्माण एवं सेवा क्षेत्र की ओर जाने का आकर्षण बढ़ता है।

हालाँकि, भारतीय अर्थतंत्र वृद्धि की गति कमजोर होने के कारण श्रमिकों में कृषि से विस्थापन के रूझान में कमी के संकेत मिल रहे हैं। तथापि, गैर–कृषि क्षेत्र में, मुख्यतः लघु उद्योगों में श्रमिकों की माँग कमोबेश अनियमित रही है। अनियमित श्रमिक और छोटे पैमाने के रोजगार (उद्योग के आकार के अनुसार) का अनुपात भी यही बताता है कि भारत के गैर–कृषि क्षेत्र में उत्पादकता का स्तर अपेक्षाकृत नीचा है। दूसरे शब्दों में इस ओर रूझान में कमी है। लेकिन भारत में यदि लगातार उच्च विकास के प्रयास और श्रम कानूनों में सुधार किए जायें तो इसमें मजबूती आ सकती है।

इसके अलावा, भारत में ग्रामीण कृषि से शहरी निर्माण और सेवा के क्षेत्र में विस्थापन की गति भी धीमी है। भारत में शहरीकरण का अनुपात चीन के 50 प्रतिशत की तुलना में 30 प्रतिशत के आस–पास है। भारत में गाँव से शहर की ओर प्रवासन का स्पष्ट रूझान होने के बावजूद इसकी गति धीमी रही है जिससे इसके कमजोर होने का पता चलता है।

दूसरी ओर, कृषि से दूसरे क्षेत्रों में श्रम आपूर्ति पर ग्रामीण इलाकों में प्राप्त मजदूरी का भी असर हुआ है। मनरेगा (राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम) जैसे सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों से असल में ग्रामीण आमदनी और उत्साह में बढ़ोतरी हुई है जिससे कृषि से अलग होने के "दबाव" में कमी आई है। गाँवों में जैसे–जैसे मजदूरी बढ़ती है, शहरी श्रम बाजार में विसंगति पैदा होती है और "दबाव" के कारक तत्व कमजोर पड़ जाते हैं।

इन कारक तत्वों का असर पुरुषों और स्त्रियों पर एक समान नहीं है। पुरुषों की तुलना में ग्रामीण स्त्रियों के काम–काज की विविधता और कृषि से उनके अलग होने की गति में कमी देखी गई है।

मनरेगा समेत विभिन्न सरकारी योजनाओं की बदौलत वर्ष 2006–07 के बाद से ग्रामीण मजदूरी में 17 प्रतिशत के औसत दर से वृद्धि हो रही है जो शहरी मजदूरी के वृद्धि दर से आगे निकल चुकी है (गोल्डमैन सैश, 2014)। इस अध्ययन के निष्कर्ष के अनुसार ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि के पीछे दरअसल मनरेगा में शामिल होने वाले परिवारों की हिस्सेदारी एक बड़ा कारण है। इस अध्ययन से यह अवधारण भी सत्य साबित होती है कि जिन राज्यों में मनरेगा को अधिक पैमाने पर लागू किया गया है वहाँ मुद्रास्फीति बढ़ी है। अध्ययन के अंत में कहा गया है कि न केवल खेतिहर मजदूर शहरी क्षेत्रों में नहीं जा रहे हैं बल्कि उत्पादकता में बढ़ोतरी के बगैर मजदूरी में बढ़ोतरी के कारण मुद्रास्फीति में उछाल आ रहा है।

संक्षेप में कहा जाए तो कृषि में श्रम की उपलब्धता बच्चों की शिक्षा और अवस्था जैसे कतिपय सामाजिक कारकों के अलावा अनिवार्य रूप से गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार के सृजन, शहरीकरण की गति, सामाजिक योजनाओं, ग्रामीण क्षेत्र में प्रोत्साहन और कृषि क्षेत्र में पारिश्रमिक पर निर्भर करती है।

श्रमिक अल्पता के प्रमुख कारणों का पता लगाने हेतु 2011 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 'स्थानीय स्तर के अन्य काम–धंधों में ज्यादा मजदूरी' को 'सबसे पहला' कारण के रूप में चिन्हित किया गया। सर्वेक्षण में कहा गया कि स्थानीय

स्तर पर राजगिरी, बढ़ईगिरी, बिजली और प्लम्बिंग जैसे गैर–कृषि काम–धंधों में ज्यादा मजदूरी मिलने के कारण खेतिहर मजदूर इनकी ओर आकर्षित हुए। चूँकि खेतीबारी की कार्यकुशलता का कोई महत्व नहीं होता इसलिए मजदूर वैसे दूसरे काम अपना लेते हैं जिनमें उन्हें ज्यादा मजदूरी मिल सकती है।

खेती का काम मौसमी होता है और खाली मौसम में मजदूरों को बेरोजगारी झेलनी पड़ती है। इसके चलते वे पूरे साल आमदनी देने वाले नियमित/स्थायी काम की तलाश करने लगते हैं। यह दूसरा सबसे बड़ा कारण माना गया। खेतिहर मजदूर के रूप में काम करने को गाँवों में नीची नजर से देखा जाता है और इसे तीसरा सबसे बड़ा कारण माना गया। शैक्षणिक स्तर में सुधार के कारण बाहर जाने, ज्यादा मजदूरी के लिए नजदीकी शहरों की ओर प्रवासन और विदेशों में प्रवासन को क्रमशः चौथा, पाँचवाँ और छठा सबसे बड़ा कारण माना गया। "द इकोनॉमिस्ट" में छपी एक रिपोर्ट में यह रेखांकित किया गया है कि किस प्रकार शहरों में अधिक–से–अधिक मजदूर नौकरी को एक 'सुरक्षा कवच' के रूप में मान रहे हैं जिससे उन्हें ज्यादा मजदूरी मिले और बेगारी कम हो सके।

कृषि में श्रम अल्पता के कारण (महत्व के क्रमानुसार)

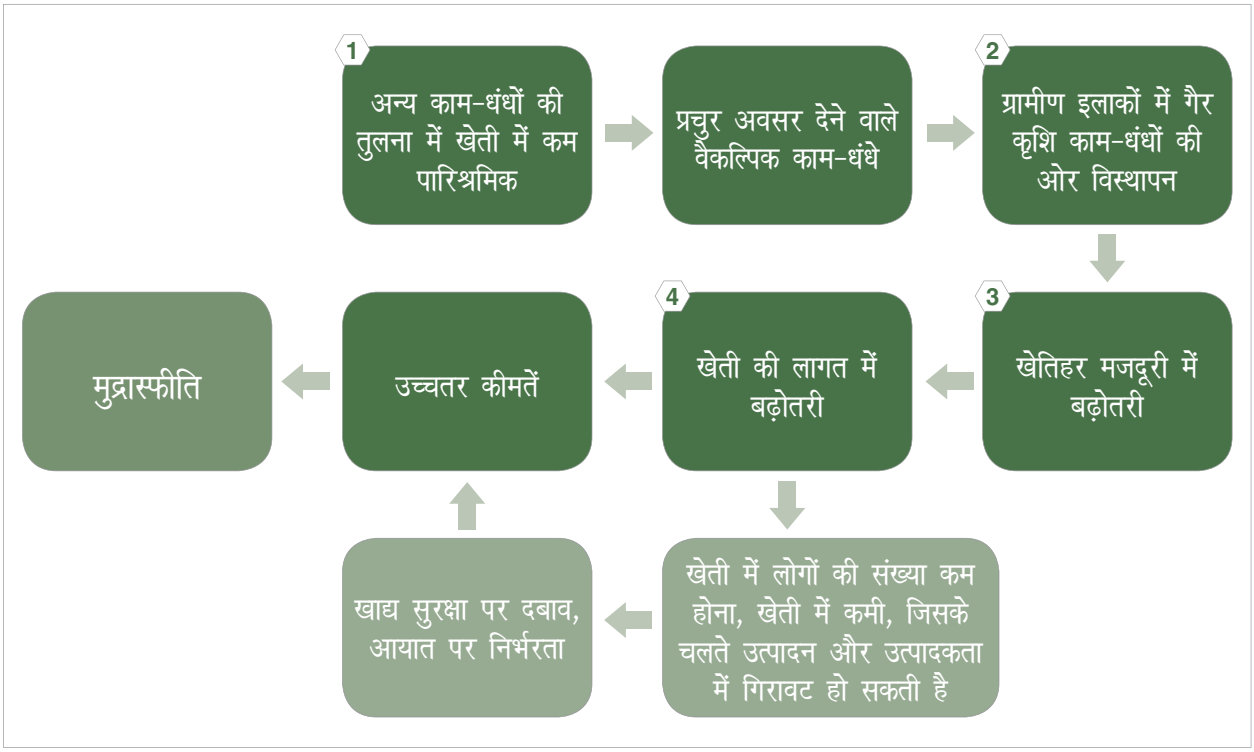
1. स्थानीय स्तर पर ज्यादा मजदूरी वाले अन्य काम–धंधों की उपलब्धता
2. खेती का काम मौसमी होने के कारण किसी नियमित/स्थायी काम में लगना
3. खेतिहर मजदूरी के प्रति अपमानजनक नजरिये का होना
4. ज्यादा मजदूरी के लिए निकटवर्ती षहरों की ओर प्रवासन
5. शैक्षणिक स्तर में उन्नति के कारण प्रवासन
6. विदेशों की ओर प्रवासन

स्रोतः श्रमिक अल्पता–इसकी व्यापकता और कृषि पर प्रभाव, सी.प्रभाकर, के. सीता देविया एवं एस.सेल्वम।

अगले खंडों में हमने श्रमिक अल्पता के कारणों का विश्लेषण करने और उपर्युक्त कारणों में से कुछेक की विश्वसनीयता एवं महत्व का मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।

श्रमिकों के अभाव की गुत्थी का समाधान

भारतीय कृषि में आगे उत्पादकता बढ़ने के लिए इंतजार करना पड़ेगा क्योंकि इस क्षेत्र से परंपरागत रूप से सस्ते और अतिरिक्त श्रमिकों का पलायन हो रहा है। यदि श्रमिक आवश्यकता के विकल्प के पर्याप्त उपाय नहीं किए गए तो खेतों की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है जिसका अप्रत्यक्ष प्रभाव पैदावार की कीमतों पर पड़ेगा।



चूँकि इनपुट लागतों में बढ़ोतरी के कारण खेती से लाभ में कमी आती है और महँगाई का फायदा अक्सर किसानों को नहीं मिल पाता है, इसलिए खेती से होने वाले रिटर्न पर असर हो रहा है। इससे मजदूरों को प्रतिस्पर्धात्मक मजदूरी देने की किसानों की क्षमता पर बुरा असर होता है। दूसरी ओर, वैकल्पिक उद्योगों में अवसर पैदा हो रहे हैं जो तेज गति से बढ़ रहा है। इन क्षेत्रों में सालों भर काम मिलता है और खेतिहर मजदूर इनकी ओर आकर्षित हो रहे हैं।

इन कारणों के चलते खेती में श्रमिकों की कमी हो रही है जिसके माँग और आपूर्ति की खाई बढ़ गई है। नतीजतन हर साल खेतिहर मजदूरी अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बढ़ रही है और बदले में खेती की सकल लागत बढ़ रही है जबकि रिटर्न में कोई खास इजाफा नहीं हो रहा है।

हालाँकि देश के अलग–अलग हिस्सों में श्रमिकों की कमी के अनेक और भी कारण हैं तथापि उपर सूचीबद्ध किए गए कारणों का असर अधिक है जिनका विस्तृत विश्लेषण अगले खंडों में किया गया है।

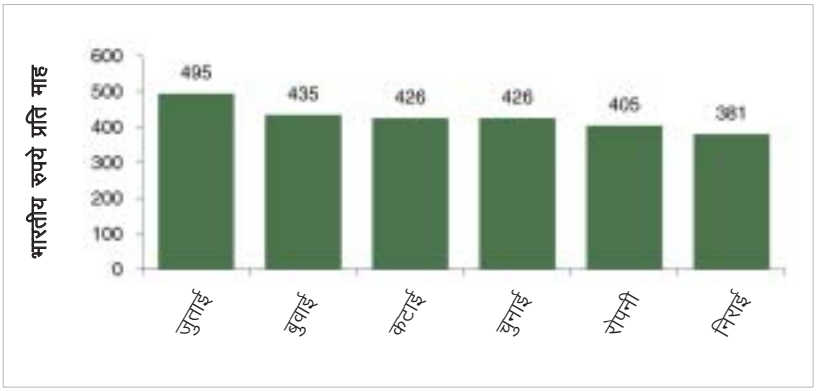
कृषि में न्यून पारिश्रमिक के साक्ष्य

कृषि में न्यून पारिश्रमिक के अनेक कारण हैं। जोत की जमीन का औसत वर्ष 1971 के 2.3 हेक्टेयर से घटकर 2011 में 1.16 हेक्टेयर पर आ गया। उर्वरक और श्रमिक जैसे निवेश लागत में बढ़ोतरी से खेती की लागत बढ़ी है और प्रत्येक खेत से होने वाले रिटर्न में कमी हुई है। सौदेबाजी की सीमित ताकत रखने वाले छोटे और सीमांत किसानों के लिए उनकी पैदावार पर मिलने वाली कीमत अक्सर बाजार दर के अनुरूप नहीं होती जिससे भावी आमदनी प्रभावित होती है। सभी फसल करने वाले किसानों के लिए पारिश्रमिक की तुलना से पता चलता है कि एक किसान को प्रति हेक्टेयर धान की खेती से प्रति माह लगभग 2,400 रुपये और प्रति हेक्टेयर गेहूँ से प्रति माह लगभग 2,600 रुपये की कमाई होती है। दूसरी ओर खेतिहर मजदूर प्रति माह लगभग 5,000 रुपये से भी कम कमा पाते हैं। आँध्र प्रदेश के तीन जिलो में केपीएमजी द्वारा वर्ष 2012 में किए गए एक अध्ययन में बताया गया कि एक छोटे किसान की प्रति माह कमाई 1,100 से 3,000 रुपये और बड़े किसान की 3,000 से 6,000 रुपये तक होती है जबकि भूमिहीन मजदूर की कमाई प्रति माह 1,300 से 3,000 रुपये के बीच थी।

फसल के आधार पर खेती से प्राप्ति

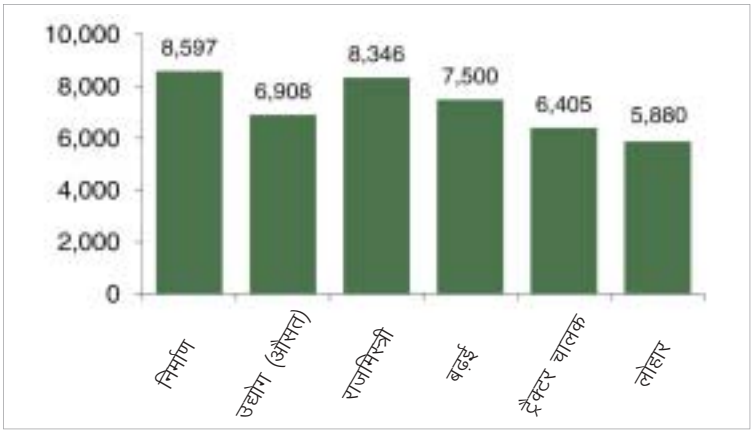
फसल	प्रति हेक्टेयर प्रति माह प्राप्ति
धान	2,402
गेहूँ	2,263
गन्ना	15,464
कपास	7,260
मूँगफली	2,332
सोयाबीन	1,675

पेशा के आधार पर औसत पारिश्रमिक (भारतीय रुपये प्रति दिन)



स्रोतः कृषि सहकारिता विभाग, इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण
नोटः प्राप्ति वर्ष 2010–11 की है।

गैर–कृषि पेशा के आधार पर औसत पारिश्रमिक (भारतीय रुपये प्रति माह)



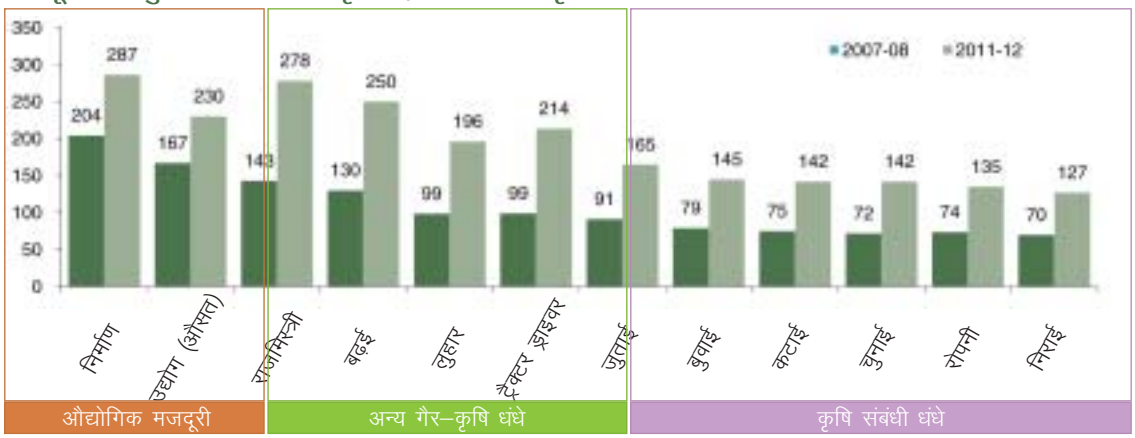
स्रोतः इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण

स्त्रियों के लिए खेतिहर दैनिक मजदूरी पुरुषों के मुकाबले खेती संबंधी कार्यों के आधार पर 15 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक कम है।

दूसरी ओर एक औसत औद्योगिक मजदूर लगभग 7,000 रुपये प्रति माह और निर्माण मजदूर 8,000 रुपये प्रतिमाह की कमाई कर लेता है। इसके अतिरिक्त, गैर–कृषि क्षेत्र में कृषि के मौसमी चरित्र के विपरीत पूरे साल काम उपलब्ध होते हैं।

कृषि और गैर–कृषि क्षेत्र रोजगार में मजदूरी की तुलना से पता चलता है कि गैर–कृषि क्षेत्र में कई सामान्य कार्यों के बदले अधिक मजदूरी मिलती है। निर्माण क्षेत्र में एक राजमिस्त्री की दैनिक मजदूरी खेतों में निराई करने वाले की मजदूरी के दोगुना से अधिक और जुताई करने वाले से करीब–करीब दोगुना है। बढ़ई, ड्राइवरों, लुहारों आदि जैसे गैर–कृषि पेशा में लगे लोगों की मजदूरी खेतिहर मजदूरी से कम–से–कम 15–20 प्रतिशत ज्यादा है। कृषि संबंधी विभिन्न पेशा की तुलना में औद्योगिक मजदूरी डेढ़ गुणा से ज्यादा है जिससे इसकी वरीयता का कारण स्पष्ट होता है।

मजदूरी की तुलना – उद्योग, कृषि एवं अन्य गैर कृषि धंधे



स्रोत: श्रम एवं नियोजन कार्यालय, इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण

यह देखा जा सकता है कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न धंधों के लिए गैर–कृषि मजदूरी कृषिगत मजदूरी से लगातार उच्चतर स्तर पर बनी हुई है। इन राज्यों में केरल, पंजाब और तमिलनाडु भी शामिल हैं जहाँ कृषिगत मजदूरी की दर ऊँची है।

हालाँकि अधिकतर राज्यों में राजगिरी और बढ़ईगिरी जैसे गैर–कृषि धंधों की तुलना में कृषिगत मजदूरी में तीव्र दर पर वृद्धि हुई है तथापि समग्र रूप से यह अभी की कम है।

	2005-06			2011-12			CAGR		
	बढ़ईगिरी	राजगिरी	कृषि[2]	बढ़ईगिरी	राजगिरी	कृषि	बढ़ईगिरी	राजगिरी	कृषि
केरल	215	214	218	489	477	381	15 प्र.	14 प्र.	10 प्र.
पंजाब	174	173	95	375	376	286	14 प्र.	14 प्र.	20 प्र.
तमिलनाडु	130	138	77	374	398	275	19 प्र.	19 प्र.	24 प्र.
हिमाचल प्रदेष	194	196	83	341	340	273	10 प्र.	10 प्र.	22 प्र.
आँध्र प्रदेष	86	109	62	226	278	265	17 प्र.	17 प्र.	27 प्र.
हरियाणा	152	186	116	322	351	256	13 प्र.	11 प्र.	14 प्र.
राजस्थान	142	156	67	324	369	213	15 प्र.	15 प्र.	21 प्र.
पष्चिम बंगाल	99	102	79	200	219	213	13 प्र.	14 प्र.	18 प्र.
कर्नाटक	98	109	68	227	234	203	15 प्र.	14 प्र.	20 प्र.
महाराश्ट्र	108	122	51	230	273	195	13 प्र.	14 प्र.	25 प्र.
उत्तर प्रदेष	126	139	79	266	306	163	13 प्र.	14 प्र.	13 प्र.
गुजरात	137	149	98	230	293	156	9 प्र.	12 प्र.	8 प्र.
असम	117	126	66	221	242	152	11 प्र.	11 प्र.	15 प्र.
बिहार	104	118	63	235	262	146	15 प्र.	14 प्र.	15 प्र.
ओडिषा	117	119	50	238	254	134	13 प्र.	13 प्र.	18 प्र.
मध्य प्रदेष	88	104	55	162	209	125	11 प्र.	12 प्र.	15 प्र.

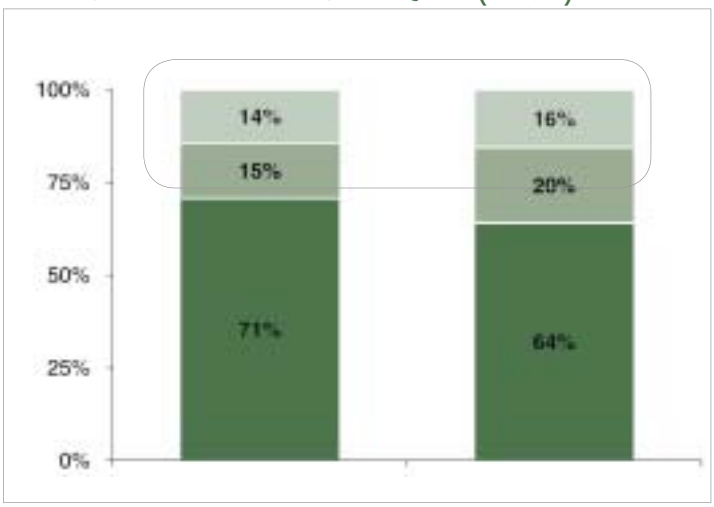
स्रोत: श्रम एवं नियोजन कार्यालय, इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण

नोट: जुताई के लिए मजदूरी नमूने के तौर पर है, पुरुष खेतिहर श्रमिकों की मजदूरी निर्देशक है।

ग्रामीण इलाकों में गैर–कृषि क्षेत्रों की ओर विस्थापन

ग्रामीण इलाकों में वर्ष 2005–06 और 2011–12 के बीच भवन निर्माण एवं उत्पादन जैसे द्वितीयक क्षेत्रों की ओर विस्थापन स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ ग्रामीण रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र का हिस्सा 71 प्रतिशत से घटकर 64 प्रतिशत हो गया वहीं द्वितीयक क्षेत्र में अधिक विस्थापन हुआ और इसका हिस्सा 15 प्रतिशत से बढ़कर 20 प्रतिशत हो गया। उधर, तृतीयक क्षेत्र में भी थोड़ी–बहुत बढ़ोतरी देखी गई। अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण इलाकों में द्वितीयक क्षेत्र के रोजगार में निर्माण का हिस्सा लगभग 42 प्रतिशत है और इस क्षेत्र में बढ़ते अवसरों के नतीजे के रूप में कृषि से विस्थापन हो रहा है।

समस्त क्षेत्रों में ग्रामीण श्रमबल का हिस्सा (प्रतिशत)

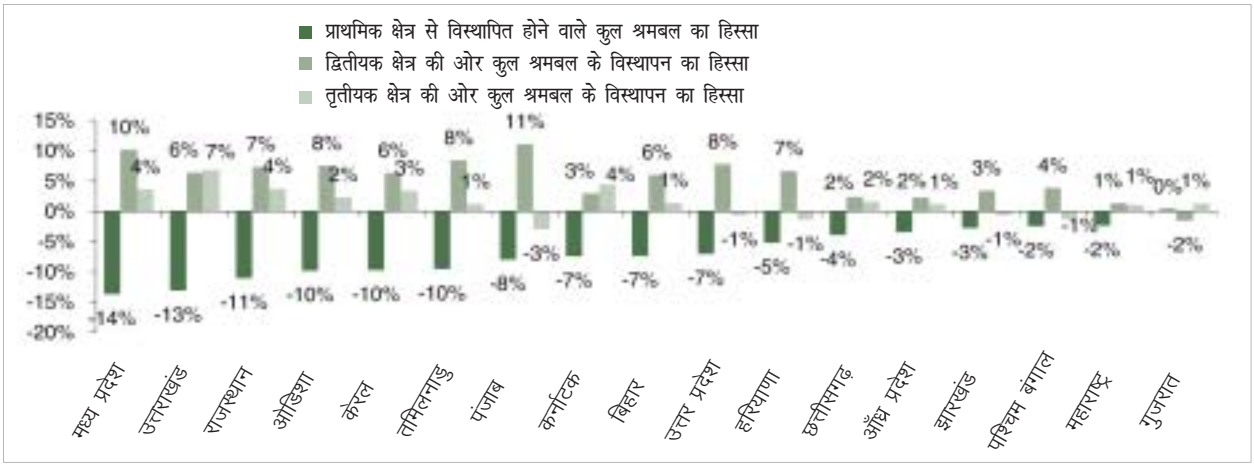


- **प्राथमिकः** कृषि, मत्स्य पालन, वानिकी
- **द्वितीयकः** खनन, उत्पादन, निर्माण, बिजली–गैस एवं वाष्प और वातानुकूलक आपूर्ति, जल आपूर्ति–नालियाँ–कचरा प्रबंधन एवं निदानात्मक गतिविधियाँ।
- **तृतीयकः** थोक एवं खुदरा व्यापार, मोटरगाड़ियों और मोटरसाइकिलों की मरम्मत, परिवहन और भंडारण, वित्तीय एवं बीमा संबंधी गतिविधियाँ, इत्यादि।

स्रोतः एनएसएसओ, केपीएमजी का विश्लेषण

समान दृश्य राज्य स्तर पर भी दिखाई देता है जहाँ अधिकांश विस्थापन कृषि से द्वितीयक क्षेत्रों में हुआ है, हालाँकि कुछ विस्थापन तृतीयक क्षेत्र में भी हुआ है (पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा और झारखंड को छोड़कर जहाँ द्वितीयक क्षेत्र में रोजगार में भारी बढ़ोतरी के साथ प्राथमिक एवं तृतीयक दोनों ही क्षेत्र में रोजगार का अनुपात घटा है)। उदाहरण के लिए पंजाब का जिक्र किया जा सकता है जहाँ प्राथमिक क्षेत्र में रोजगार में 8 प्रतिशत और तृतीयक क्षेत्र में 3 प्रतिशत तक गिरावट आई है जबकि द्वितीयक क्षेत्र में 11 प्रतिशत तक बढ़ोतरी हुई है।

ग्रामीण इलाकों में 2007–08 से 2011–12 के बीच रोजगार के स्वरूप में बदलाव



स्रोतः एनएसएसओ, केपीएमजी का विश्लेषण



इस अध्याय के पिछले पन्नों में गैर–कृषि क्षेत्रों से 'दबाव' वाले कारकों को स्पष्ट किया गया है जिनके कारण कृषि से गैर–कृषि क्षेत्रों की ओर श्रमिकों का पलायन हुआ है।

इस पलायन के पीछे कृषि क्षेत्र में न्यूनतर पारिश्रमिक प्रमुख कारण रहा है। इसे दूसरे गैर–कृषि व्यवसायों और विभिन्न राज्यों में मजदूरी की तुलना से सिद्ध किया गया है।

यह तथ्य शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्र में व्याप्त है जिसके कारण पलायन हुआ। लेकिन एक निश्चित अवधि के बाद कृषि क्षेत्र में मजदूरी में स्वतः बदलाव पर नजर डालना भी जरूरी है।

गुलाटी का अनुमान (2013) है कि सांकेतिक खेतिहर मजदूरी में 2000 के दशक (2001–02 से 2011–12) के दौरान 8.9 प्रतिशत के औसत वार्षिक दर से वृद्धि हुई, लेकिन 2001–02 से 2006–07 तक यह वृद्धि दर केवल 1.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी और 2008–08 से 2011–12 की अवधि में यह वृद्धि 17.5 प्रतिशत की ऊँचाई पर थी।

समान स्वरूप वास्तविक खेतिहर मजदूरी में भी दिखाई देता है – वास्तविक मजदूरी 2001–02 से 2006–07 की अवधि में स्पष्टतः (–) 1.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की गिरावट हुई और फिर 2007–07 से 2011–12 की अवधि में यह 6.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष पर चला गया। 1990–91 से 2011–12 की विस्तारित अवधि में वास्तविक खेतिहर मजदूरी में 2.9 प्रतिशत की दर से औसत वार्षिक वृद्धि हुई जो काफी कम है। असल में, मजदूरी में 1990 के दशक की वृद्धि का रूझान बरकरार रहा होता तो वास्तविक खेतिहर मजदूरी 2011–12 के स्तर से काफी ज्यादा होती।

कुल मिलाकर 2001–02 से 2006–07 तक की अवधि खेतिहर कामगारों के लिए खासा मुश्किल भरा दौर था क्योंकि उस दौरान खेतिहर मजदूरी में वास्तव में गिरावट हो रही थी। समग्रता में इससे यह संभवतः यह भी पता चलता है कि किस कारण से 1990 के दषक में और 2000 के दशक के आरंभ में अतिरिक्त श्रमिबल की खपत हो रही थी और 2004–05 के बाद खेतिहर श्रमबल में शुद्ध कमी क्यों आई।

जहाँ तक वास्तविक खेतिहर मजदूरी के संदर्भ में विभिन्न राज्यों का सवाल है, राज्य स्तरीय अलग–अलग आँकड़े बताते हैं कि केरल, राजस्थान, कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, असम और मध्य प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में 2000 के दशक की अपेक्षा 1990 के दशक के दौरान मजदूरी में ज्यादा वृद्धि देखी गई। दूसरी ओर उक्त पूरी अवधि के दौरान गुजरात और हरियाणा वास्तविक खेतिहर मजदूरी में न्यून वृद्धि के मामले में अव्वल रहे (गुलाटी, 2013)। कुल मिलाकर, 2000 के दशक में अधिकतर राज्यों में 2001–02 से 2006–07 की अवधि में वास्तविक खेतिहर मजदूरी में ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई।

2006–07 के बाद कृषि क्षेत्र में उच्चतर मजदूरी के पीछे जीडीपी की "ताकत" काम कर रही थी जिसके कारण वास्तविक खेतिहर मजदूरी की वृद्धि में मदद मिली। यह मोटे तौर पर थाइलैंड और चीन जैसे दूसरे विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के अनुरूप ही था (युसुफ एवं सैश, 2008)। इसके साथ–साथ 2006 से मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण श्रम बाजार में सरकार पहलों के "दबाव" वाले कारक भी काम कर रहे थे जिनकी बदौलत ग्रामीण मजदूरों को अपने खेतिहार कामों के लिए उच्चतर मजदूरी माँगने का हौसला मिला था।

आगे हम मनरेगा जैसे "दबाव" वाले कारकों का विश्लेषण करेंगे।

मनरेगा का प्रभाव

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एमजीएनआरईजीए) यानी मनरेगा विश्व का सबसे बड़ा अधिकार–आधारित सामाजिक सुरक्षा पहल है। क्रमिक रूप से फरबरी 2006 में इसकी शुरुआत की गई थी जब पहले चरण में 200 सर्वाधिक पिछड़े जिलों को शामिल किया गया था। नरेगा (एनआरईजीए) का महत्व इस तथ्य से पता चलता है कि इससे मजदूरी आधारित रोजगार कार्यक्रम का एक अधिकार सम्मत ढाँचा तैयार हुआ है जिसके तहत सरकार का यह कानूनी दायित्व बनता है कि वह इच्छुक लोगों को रोजगार मुहैया करे। इस प्रकार इस कानून से रोजगार का अधिकार सुनिश्चित करने की दिशा में सामाजिक सुरक्षा का बड़ा उद्देश्य पूरा होता है।

प्रमुख राज्यों में मनरेगा के तहत दैनिक मजदूरी (भारतीय रुपये में)						
	2007.08	2009.10	2011.12	2012.13	कृषि 2012.13	सी ए जी आर
आँध्र प्रदेश	71	100	121	137	265	10 प्र.
बिहार	81	100	120	122	146	8 प्र.
गुजरात	100	100	124	134	156	10 प्र.
हरियाणा	135	141	179	191	256	11 प्र.
कर्नाटक	74	100	125	155	203	15 प्र.
मध्य प्रदेश	88	100	122	132	125	10 प्र.
महाराष्ट्र	69	69	127	145	195	24 प्र.
पंजाब	98	100	153	166	286	16 प्र.
राजस्थान	100	100	119	133	213	10 प्र.
तमिलनाडु	80	100	119	132	275	10 प्र.
उत्तर प्रदेश	100	100	120	125	163	9 प्र.
पश्चिम बंगाल	75	100	130	136	213	11 प्र.

स्रोतः इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण

नोटः जुताई की मजदूरी का प्रयोग कृषि के लिए प्रतिनिधि तौर पर किया गया है।

इसका लक्ष्य प्रत्येक ऐसे परिवार को जिसके वयस्क सदस्य अपने आवास के 6 किलोमीटर के दायरे में अकुशल मजदूरी करने के इच्छुक हैं, एक वित्तीय वर्ष में कम–से–कम 100 दिनों के रोजगार की गारंटी करना है। ऐसा समझा जाता है इसके तहत अधिकांश कार्य खेती संबंधी कार्यों की अपेक्षा कम मेहनत और कम समय में करने वाले होते हैं। परिणामस्वरूप, इस योजना के बारे में अक्सर कहा जाता है कि श्रम अल्पता और खेतिहर मजदूरी की बढ़ोतरी में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

मनरेगा के अंतर्गत राजगार पाने वाले परिवारों की संख्या – मिलियन में					
	2007–08	2009–10	2011–12	2012–12	औसत (2008–13)
आँध्र प्रदेश	4.8	6.2	4.9	5.3	5.0
उत्तर प्रदेश	4.1	5.5	7.3	4.4	4.9
राजस्थान	2.2	6.5	4.5	4.0	4.4
पश्चिम बंगाल	3.8	3.5	5.4	4.7	4.1
मध्य प्रदेश	4.3	4.7	3.7	2.5	4.0
तमिलनाडु	1.2	4.4	6.3	6.5	3.9
बिहार	3.9	4.1	1.7	1.5	3.1
कर्नाटक	0.5	3.5	1.7	0.8	1.5
केरल	0.2	1.0	1.4	1.6	0.9
गुजरात	0.3	1.6	0.8	0.6	0.8
महाराष्ट्र	0.5	0.5	1.4	1.3	0.8
पंजाब	0.0	0.3	0.2	0.2	0.2
हरियाणा	0.1	0.2	0.3	0.2	0.2
कुल योग	**33.9**	**52.5**	**49.9**	**41.6**	**42.7**

स्रोतः मनरेगा वेबसाइट, केपीएमजी का विश्लेषण

फिर भी मनरेगा की मजदूरी की दर अधिकतर राज्यों में प्रचलित खेतिहर मजदूरी दर से कम है, हालाँकि बिहार और मध्य प्रदेश इसके अपवाद हैं जहाँ यह खेतिहर मजदूरी के समुतल्य है। तथापि, मनरेगा की व्याप्ति के आँकड़े बताते हैं कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु इत्यादि राज्यों में जहाँ कृषि से सर्वाधिक मजदूरों का पलायन हुआ है, मनरेगा के तहत सबसे ज्यादा रोगार मुहैया किए गए जिससे मनरेगा और श्रम अल्पता की समस्या का संबंध पता चलता है।

आँध्र प्रदेश में केपीएमजी द्वारा किए गए एक अध्ययन से खेतिहर मजदूरों की उपलब्धता और बढ़ती खेतिहर मजदूरी पर मनरेगा योजना का प्रभाव पता चला है। यह पाया गया कि कई मामलों में विभिन्न पंचायतों ने मनरेगा का कैलेण्डर और कृषि संबंधी जरूरतों में तालमेल का ध्यान रखा ताकि कोई एक दूसरे से बाधित न हो जिससे स्पष्ट होता है कि विभिन्न राज्यों में खेतिहर श्रमिक अल्पता में मनरेगा की भूमिका हो सकती है।

प्रायोगिक अध्ययन

आँध्र प्रदेश में खेतिहर किसानों पर मनरेगा मजदूरी रोजगार कार्यक्रम का प्रभाव जानने के लिए केपीएमजी द्वारा हाल में किए गए अध्ययन से निम्नलिखित मुख्य बातें सामने आई हैं :

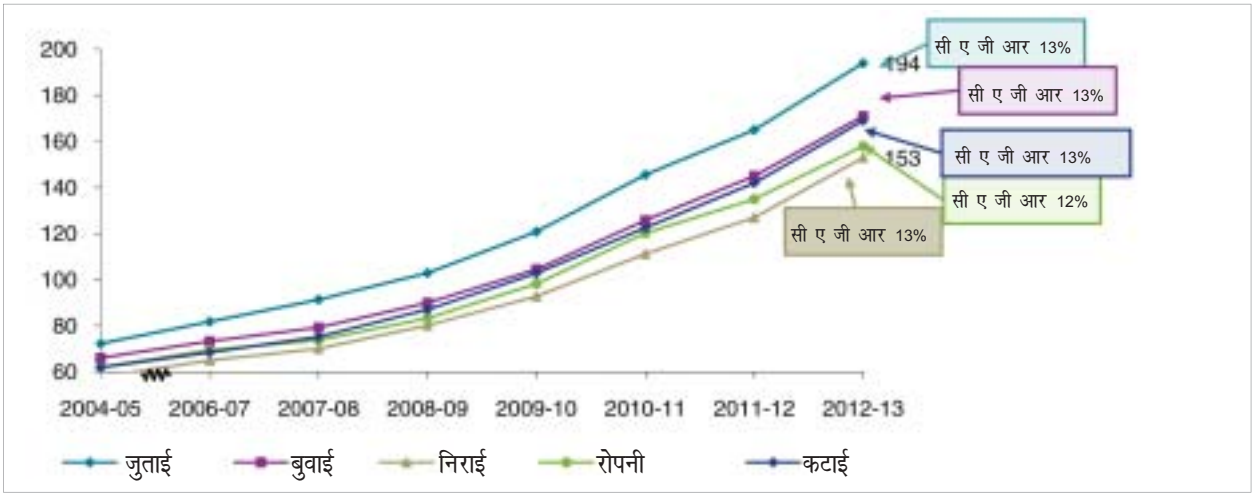
- राज्य में कृषि उत्पादकता कुल मिलाकर अच्छी रही है लेकिन किसानों का मानना है कि बढ़ती निवेश लागत (मजदूरों द्वारा ज्यादा मजदूरी की माँग समेत) का कारण मनरेगा रोजगार का लागू होना है जिससे मजदूरों को अपने श्रम की बेहतर कीमत माँगने का हौसला मिला है।
- सर्वेक्षण वाले तीन जिलों (महबूबनगर, कुर्नूल और पूर्वी गोदावरी) में प्रति एकड़ खेती की निवेश लागत में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई है। अध्ययन में शामिल किए गए जिलों में पूर्वी गोदावरी में मजदूरी पर सबसे अधिक लागत आती है जिसके चलते किसान खेत खाली छोड़ कर उत्पादन बंद कर देते हैं। जिले में मौसमी कैलेण्डर तैयार किया जा रहा है, ताकि खेती के व्यस्त मौसम में मनरेगा का काम रोककर खेतों के लिए मजदूर उपलब्ध कराए जा सकें।
- इस योजना से मजदूरों को मजदूरी दर के लिए बेहतर सौदेबाजी की स्थिति में होने का मंच मिला है। मनरेगा से दिहाड़ी मजदूरों को वैकल्पिक रोजगार के अवसर मिल रहे हैं जिससे उनमें किसानों से अधिक मजदूरी और कहीं–कहीं कम श्रम घंटे माँगने का सामर्थ्य हासिल हुआ है।
- अनेक गाँवों में पंचायतों ने मनरेगा संबंधी कार्यों की समय–सारणी तय करने में हस्तक्षेप किया ताकि फसल के मौसम से इसकी टकराहट नहीं हो और खेतों में काम के लिए मजदूर उपलब्ध हो सकें।

जैसा कि पहले कहा गया है, खेतिहर मजदूरों की उपलब्धता तय करने में मनरेगा जैसे "दबाव" वाले कारकों का भी योगदान रहा है। एक तो खेती में मजदूरी दर बढ़ाने में इसका योगदान रहा है और दूसरे, ग्रामीण इलाकों में श्रमिक उपलब्धता में भी इसकी भूमिका रही है। 2007–08 से 2011–12 के दौरान अवास्तविक खेतिहर मजदूरी में 17.5 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि में वास्तविक खेतिहर मजदूरी में 6.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष के दर से बढ़ोतरी हुई। इससे कृषि क्षेत्र की वहन क्षमता प्रभावित हुई है, साथ ही हर समय उपलब्धता भी प्रभावित हुई है। विगत कुछ वर्षों में कृषि में श्रम बल की कमी पूरे देश में व्याप्त रही है जिससे अलग–अलग पैमाने पर लगभग सभी क्षेत्र प्रभावित हुए हैं। व्यस्त मौसम में बुवाई, कटाई आदि कार्यों के लिए श्रमिकों की अनुपलब्धता किसानों के बीच आम शिकायत रही है।

2006–07 के बाद से खेतिहर मजदूरी में अत्यधिक वृद्धि और इसके परिणाम

मनरेगा जैसे 'दबाव' वाले कारकों के साथ–साथ खेती के लिए उपलब्ध श्रमिकों की संख्या में शुद्ध कमी के फलस्वरूप 2006–07 के बाद से विभिन्न कृषिगत धंधों की मजदूरी में अत्यधिक वृद्धि हुई है। कमी के कारण किसानों को अपने खेतों में मजदूर लाने के लिए अधिक मजदूरी देने को बाध्य होना पड़ता है। दूसरे गैर–कृषि विकल्पों और सरकार की रोजगार गारंटी के कारण रोजगार के लिए बाहर जाने वाले आकस्मिक मजदूरों की संख्या में कमी आई है। इसके अलावा विभिन्न अध्ययनों की रिपार्ट है कि खेतों में आकस्मिक श्रम उपलब्ध वैकल्पिक धंधों की तुलना में ज्यादा थकाऊ होता है और इस तरह ग्रामीण कामगार इसे अंतिम उपाय के रूप में अपनाते हैं।

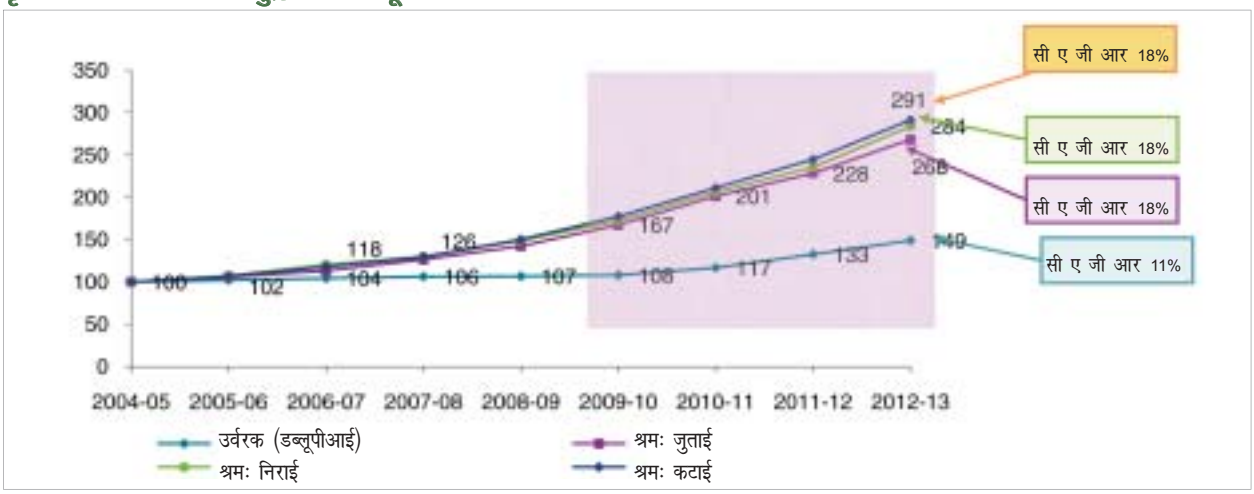
पेशा के आधार पर खेतिहर मजदूरी की दर (पुरुष)



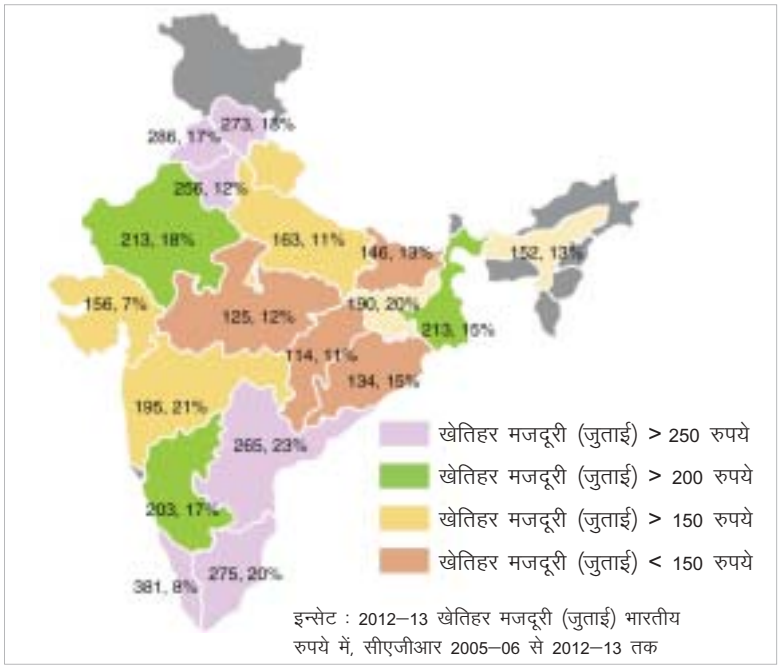
स्रोतः श्रम एवं नियोजन कार्यालय, इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण

आगे हम यह भी देखते हैं कि मजदूरों और उर्वरकों की तरह ही निवेश लागतें भी हाल के वर्षों में (2009–10 से 2012–13) तेज गति से बढ़ी हैं। अकेले मजदूरी की लागतें ही लगभग 18 प्रतिशत तक बढ़ीं जबकि उर्वरकों की लागत में लगभग 11 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई जिससे खेती की सकल लागत में इजाफा हुआ।

कृषिगत निवेश लागत मुद्रास्फीति सूचकांक



स्रोतः आर्थिक सलाहकार का कार्यालय, इंडियास्टैट,

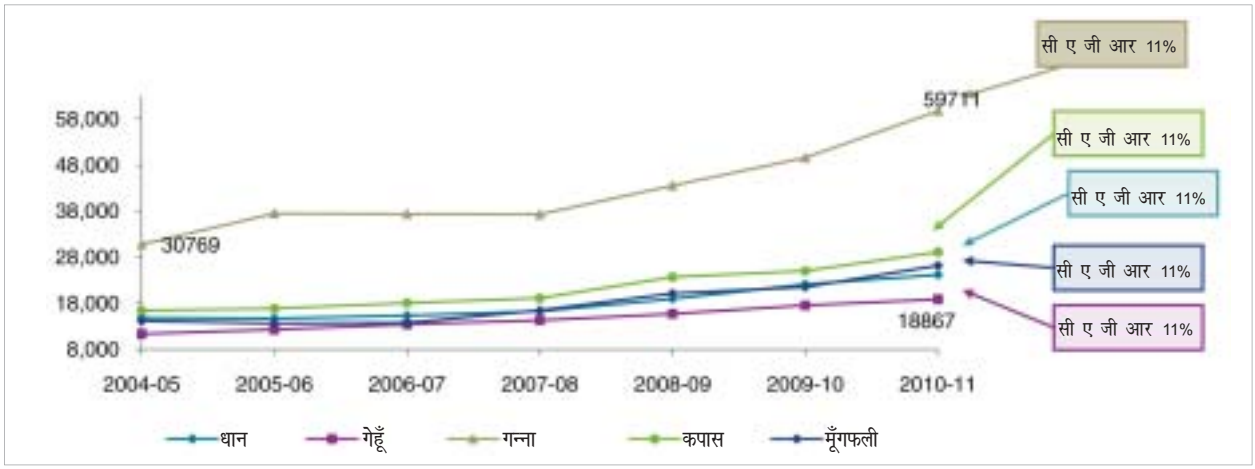


इन्सेट : 2012–13 खेतिहर मजदूरी (जुताई) भारतीय रुपये में, सीएजीआर 2005–06 से 2012–13 तक

स्रोत: एवं नियोजन कार्यालय, इंडियास्टैट, केपीएमजी का विश्लेषण

बायीं ओर के चित्र में यह दर्शाया गया है कि विभिन्न राज्यों में खेतिहर मजदूरी अलग–अलग दर से बढ़ती रही है। केरल, तमिलनाडु, आँध्र प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में कृषि क्षेत्र में सबसे ज्यादा मजदूरी है और यह काफी तेज गति से बढ़ती रही है। यहाँ यह जानना दिलचस्प होगा कि केरल, तमिलनाडु और हरियाणा में 2004–05 से 2011–12 के बीच 15 प्रतिशत से ज्यादा मजदूरों का खेती से पलायन हुआ और यह मजदूरी में अत्यधिक बढ़ोतरी का नतीजा हो सकता है। दूसरे छोर पर मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा और बिहार हैं जहाँ मजदूरी में महज लगभग 10 प्रतिशत के वार्षिक दर पर बढ़ोतरी हुई जो काफी कम है।

खेती की लागत

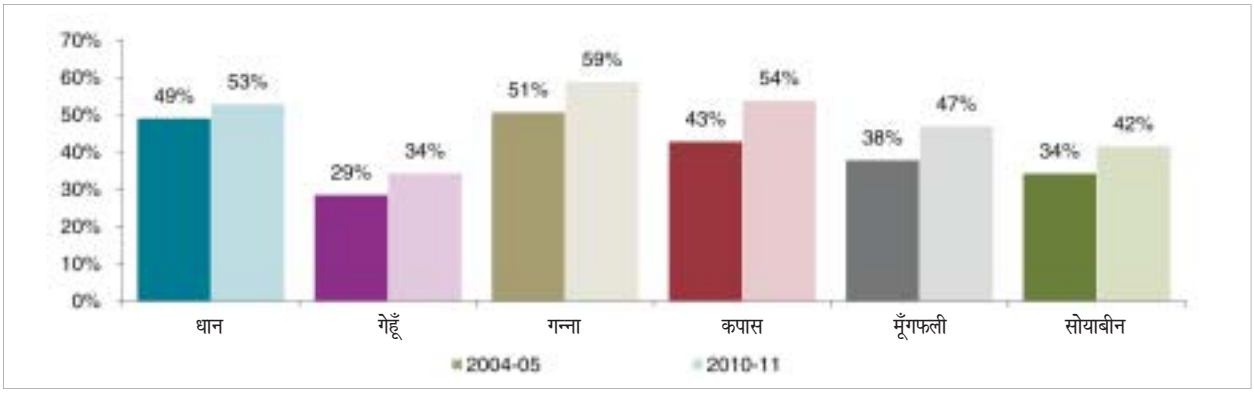


स्रोत: कृषि एवं सहकारिता विभाग।

नोट : खेती की औसत लागत फसल उगाने वाले विभिन्न राज्यों में मौजूद लागत का सामान्य औसत है।

मजदूरी दर में तेजी के नतीजे के रूप में खेती की लागत में विगत कुछ वर्षों के दौरान महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई है। यह रूझान सभी प्रमुख फसलों और विशेषकर श्रम–प्रधान फसलों में देखी जा रही है। खेती की औसत लागत का उपर्युक्त विश्लेषण (जैसा कि 2010–11 तक के लिए कृषि एवं सहकारिता विभाग द्वारा प्रकाशित किया गया है) से पता चलता है कि इन फसलों की खेती की लागत हर साल 10 प्रतिशत से ज्यादा बढ़ती रही है। बढ़ी हुई लागत किसानों द्वारा आगे बढ़ा दी जाती है जिसके आंशिक परिणाम के तौर पर चावल और गेहूँ जैसे प्रमुख खाद्यानों के थोक मूल्य में, लगभग 7 प्रतिशत सामान्य मुद्रस्फीति के सामने लगभग 10 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

खेती की समस्त लागत में श्रम लागत का हिस्सा



स्रोतः कृषि एवं सहकारिता विभाग, केपीएमजी का विश्लेषण

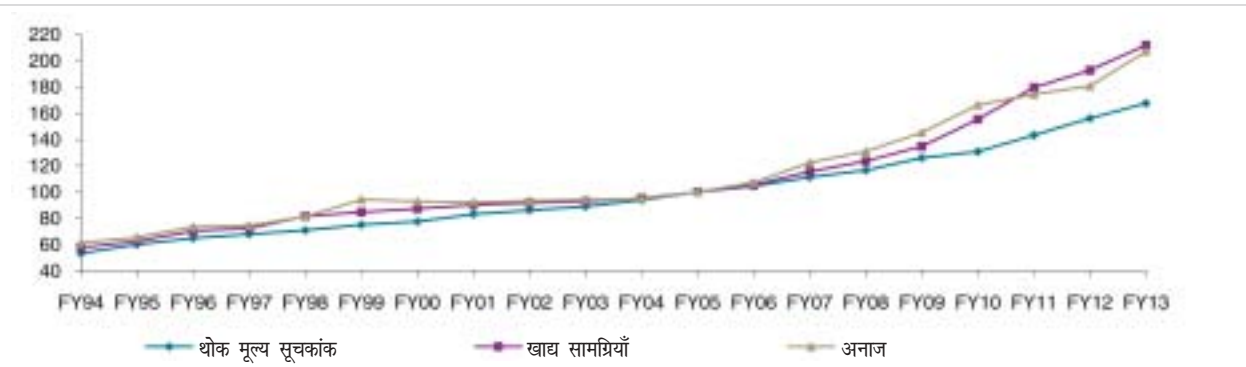
ऊपर के ग्राफ से यह पता चलता है कि किस तरह अन्य निवेशों, जो कि खेती और साथ ही समस्त फसलों की समस्त परिचालन लागत का हिस्सा हैं, की तुलना में कृषि में श्रम लागतों में तेजी से वृद्धि हुई है।

जहाँ एक ओर उच्चतर मजदूरी ग्रामीण श्रमबल में कम मजदूरी पाने वाले तबके की गरीबी कम करने और हालत सुधारने के लिए फायदेमंद है, वहीं इसका फायदा तभी हो सकता है जब कि किसान अपनी श्रमिक आवश्यकता को कम करने की स्थिति में हो और उसकी पैदावार की लागत पर उच्चतर मजदूरी का प्रभाव नहीं पड़े।

तथापि, विगत कुछ वर्षों में ऐसे परिदृश्य नहीं बन पाये हैं। मजदूरी में वृद्धि और समस्त निवेश लागतों में बढ़ोतरी से खाद्यान कीमतों की मुद्रास्फीति आंशिक तौर पर प्रभावित हुई होगी। 2005–06 से 2011–12 के बीच खाद्यान की कीमतों में करीब 10 प्रतिशत सीएजीआर से वृद्धि हुई जबकि सामान्य मुद्रास्फीति की वृद्धि 7 प्रतिशत सीएजीआर के दायरे में थी।

इससे यही साबित होता है कि एक समय के बाद किसान या तो खेती की बढ़ती लागत का बोझा उपभोक्ताओं पर डाल देंगे जिससे कीमतों में उछाल आएगा या फिर वे अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम आमदनी होने के कारण इस पेशे को ही छोड़ सकते हैं। इसका प्रभाव खाद्यान उत्पादन पर पड़ेगा और नतीजतन खाद्य सामग्रियों की कीमतें प्रभावित होंगी।

थोक मूल्य सूचकांक और खाद्यान की महँगाई



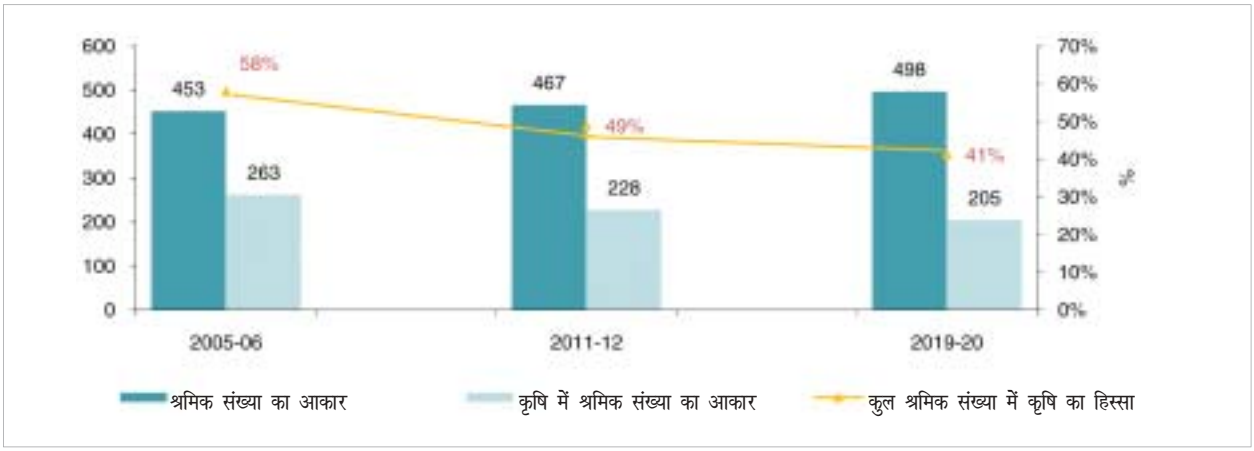
स्रोतः श्रम एवं नियोजन कार्यालय, इंडियास्टैट, केएमपीजी का विश्लेषण

2019–20 तक कृषि में श्रमबल की कमी का अनुमान

2004–05 से 2011–12 की अवधि में द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में मजबूत वृद्धि के कारण इन क्षेत्रों में भारी रोजगार सृजन हुआ था। नतीजतन, खेतिहर मजदूरों का बड़ा हिस्सा इन व्यवसायों की ओर उन्मुख हुआ जिनमें बेहतर पारिश्रमिक का प्रलोभन था। यद्यपि श्रमबल में 10 मिलियन नए लोग जुड़े, तथापि शुद्ध 30.5 मिलियन लोग कृषि से बाहर निकल गए। उसी अवधि में द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र में 4.5 प्रतिशत और 3.3 प्रतिशत तक सालाना (सीएजीआर) वृद्धि हुई जिसके पीछे इन दो क्षेत्रों में उसी अवधि के दौरान क्रमशः 8 प्रतिशत और 9.8 प्रतिशत की जीडीपी वृद्धि की शक्ति थी।

2011–12 के बाद के दो वर्षों में जीडीपी की वृद्धि दर कमजोर हुई है और 2019–20 तक की दीर्घावधि में इसमें केवल 5.3 प्रतिशत के आस–पास वृद्धि होने का अनुमान है। इन क्षेत्रों में कमजोर वृद्धि के अनुमान के कारण प्रथमिक और द्वितीयक क्षेत्र में रोजगार सृजन की गति धीमी होने की संभावना है। परिणामस्वरूप, पहले के छःवर्षीय अवधि की तुलना में आगामी वर्षों में 2019–20 तक कृषिगत श्रमिक संख्या में से पलायन की गति धीमी होने का अनुमान है। इसके बावजूद, 2019–20 तक आगामी आठ वर्षों के दौरान इस क्षेत्र में श्रमिक संख्या में और 23 मिलियन की कमी होने का अनुमान है जो कुल श्रमिक संख्या का केवल 41 प्रतिशत रह जाएगा। इस रूझान के मद्देनजर इस क्षेत्र में श्रमिक उत्पादकता बढ़ाने के लिए तत्काल कदम उठाने की आवश्यकता है।

कृषि में रोजगार (मिलियन)



स्रोतः योजना आयोग, आर्थिक आसूचना इकाई, केपीएमजी का विश्लेषण

अध्याय 3



श्रमिक अल्पता के समाधान के रणनीतिक विकल्प

कृषि उत्पादकता में सुधार

सार्वजनिक–निजी साझेदारी (पीपीपी) के आधार पर भारत में श्रमिकों की संपूर्ण उत्पादकता अधिकतर दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की तुलना में काफी कम है। तथापि, भारत में कृषि की तुलना में श्रमिकों की उत्पादकता औद्योगिक क्षेत्र में 4 गुणा और सेवा क्षेत्र में 6 गुणा ज्यादा है।

यहि हम कृषि में प्रति व्यक्ति उत्पादकता की तुलना बाकी सभी क्षेत्रों की सम्मिलित प्रति व्यक्ति उत्पादकता से करें, जैसा कि निम्नांकित तालिका में दिखाया गया है, तो वर्ष 2005–06 में अन्य क्षेत्रों की उत्पादकता 6.2 गुणा ज्यादा थी जो 2011–12 में घटकर 5.8 गुणा के स्तर पर आ गई। भारत अन्य तीन ब्रिक राष्ट्रों (ब्राजील, रूस और चीन) से पीछे है जहाँ 2011–12 के अवधि के लिए ब्राजील का अंतर गुणन 3.35, रूस का 2.67 और चीन का 4.85 था। इसका तात्पर्य यह है कि भारत का कृषि क्षेत्र बाकी ब्रिक देशों की तुलना में अनाकर्षक है।

	इकाई	2005–06	2011–12	सीएजीआर
कृषि में रोजगार का हिस्सा	प्रतिशत	58 प्र.	49 प्र.	
कृषि में रोजगार	मिलियन	263	228	2.3 प्र.
अन्य सभी क्षेत्रों में रोगजार	मिलियन	190	239	3.8 प्र.
कृषि जीडीपी (स्थिर मूल्य)	मिलियन रुपये	5,944,870	7,394,950	3.7 प्र.
कुल जीडीपी (स्थिर मूल्य)	मिलियन रुपये	32,530,730	52,435,820	8.3 प्र.
कृषि में प्रति व्यक्ति जीडीपी	**रुपये**	**22,614**	**32,373**	**6.2 प्र.**
अन्य सभी क्षेत्रों को मिलाकर प्रति व्यक्ति जीडीपी	**रुपये**	**139,660**	**188,688**	**5.1 प्र.**
कृषिगत उत्पादकता अंतर गुणांक		**6ण्2**	**5ण्8**	

स्रोतः योजना आयोग, आर्थिक आसूचना इकाई, केपीएमजी का विश्लेषण

हालाँकि इस विश्लेषण से गैर–कृषि व्यवसायों में बेहतर रिटर्न उचित जान पड़ती है और कृषि से श्रमिकों के विस्थापन के रूझान का विवरण मिलता है, तथापि इस क्षेत्र में श्रमिक माँग कम करने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए पर्याप्त उपायों के द्वारा इस समस्या का समाधान निकालना जरूरी है। अधिकतर देशों में कृषि संबंधी अनेक व्यवसायों में बदलाव के लिए खेतों में प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रयोग से इसका समाधान किया गया है। भारत को इसका शीघ्र ही अनुसरण करना होगा।

इसके अलावा, कृषि में श्रमिक की आवश्यकता निर्धारित नहीं होती है और पूरे साल मौसम और फसल के आधार पर इसमें बदलाव होता रहता है। यह खेती की जाने वाली फसल पर भी निर्भर करता है जैसे कि अन्य फसलों की अपेक्षा चावल के लिए बुवाई के समय अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होती है। फसल के पूरे जीवनचक्र में किसी भी समय श्रमिक अल्पता से फसल की पैदावार और खेती सघनता में कमी आती है एवं खेती का परंपरागत स्वरूप बदल जाता है।

फिर, भारत एक विशाल देश है जहाँ 16 तरह के कृषि–जलवायु क्षेत्र हैं। कपास की काली मिट्टी के लिए प्रौद्योगिक हस्तक्षेप जलोढ़ मिट्टी से काफी अलग होगी। इसलिए विशिष्ट फसल और भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर ही प्रौद्योगिकी और दूसरे समाधान अपनाना उचित होगा।

प्रायोगिक अध्ययनों में विभिन्न फसलों पर श्रमिक अल्पता के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। पर्याप्त श्रमिक और अपर्याप्त श्रमिक उपलब्धता वाले खेतों की तुलना से श्रमिक अल्पता के कारण पैदावार में उल्लेखनीय अंतर दिखाई देता है (निम्नांकित तालिका में इसका विवरण है)। अध्ययन के लिए चुने गए फसलों में धान और कपास सबसे बुरी तरह प्रभावित पाए गए हैं। अन्य फसलों की अपेक्षा दलहन में श्रमिक अल्पता का कम असर प्रतीत होता है क्योंकि उनकी खेती में अपेक्षाकृत कम श्रमिकों की जरूरत होती है। इसके अलावा, दलहन के फसलों की निराई और कटाई जैसे श्रमिक–प्रधान कार्य मार्च और अप्रैल महीनों में होते हैं जो खेती के लिए मंदी का समय माना जाता है।

श्रमिक अल्पता से प्रभावित और अप्रभावित खेतों की उत्पादकता का स्तरः

फसल	उत्पादकता		उत्पादकता का अंतर	
	श्रमिक अल्पता से अप्रभावित खेत	श्रमिक अल्पता से प्रभावित खेत		
	(कि.ग्रा. प्रति हे.)	(कि.ग्रा. प्रति हे.)	(कि.ग्रा. प्रति हे.)	(प्रतिशत)
धान	5,090	4,487	603	11.8 प्र.
गन्ना	153,292	144,165	9,127	6.0 प्र.
मूँगफली	3,767	3,592	175	4.6 प्र.
दलहन	850	780	70	8.2 प्र.
कपास	1,410	1,205	205	14.5 प्र.

स्रोतः श्रमिक अल्पता – इसकी विशालता एवं कृषि पर प्रभाव, सी प्रभाकर, के. सीता देवी एवं एस. सेल्वम

कृषि में श्रमिक अल्पता के परिणाम संपूर्ण राज्योंपर पड़े हैं और समस्त क्षेत्र एवं देश पर इसके प्रभाव को रोकने के लिए समाधान निकालने की जरूरत है। इस दिशा में निवेश घटकों और पैदावार घटकों के संदर्भ में दोतरफा पद्धति अपनाई जानी चाहिए।

निवेश संबंधी घटकः

- तात्कालिक प्रभावः मानव श्रम की आवश्यकता को विस्थापित और/या कम करने वाली तकनीकें अपनाई जानी चाहिए।
- दीर्घकालिक प्रभावः कृषि से होने वाले लाभ में वृद्धि और कृषि से अन्य क्षेत्रों में श्रमिकों के प्रवासन को रोकना।

पैदावार संबंधी घटक :

- कृषि –लिंकेज घटक

निवेश घटक:

भारतीय कृषि में श्रम प्रतिस्थापन

ऐसी अनेक प्रौद्योगिकियाँ व्यवहार में लाई जा सकती हैं जिनसे या तो श्रम का प्रतिस्थापन हो सकता है या श्रमिकों की आवश्यकता और श्रमिक आवश्यकता में परिवर्तन को पूरे साल कम किया जा सकता है। इनमें से कतिपय प्रौद्योगिकियाँ देश के विभिन्न हिस्सों में पहले ही से लागू की जा रही हैं जिसके अच्छे नतीजे मिले हैं, हालाँकि समस्या का प्रभावकारी समाधानकरने वाली अन्य प्रौद्योगिकियों को भी विकसित करने के लिए सहयोग की आवश्यकता है।

श्रमिक अल्पता – इसकी विशालता और प्रभाव पर किए गए प्रायोगिक अध्ययन से साफ पता चलताा है कि श्रम की बचत करने वाली तकनीकों को अपनाने से न केवल श्रमिक अल्पता की समस्या का समाधान बल्कि पैदावार बढ़ाना भी संभव है।

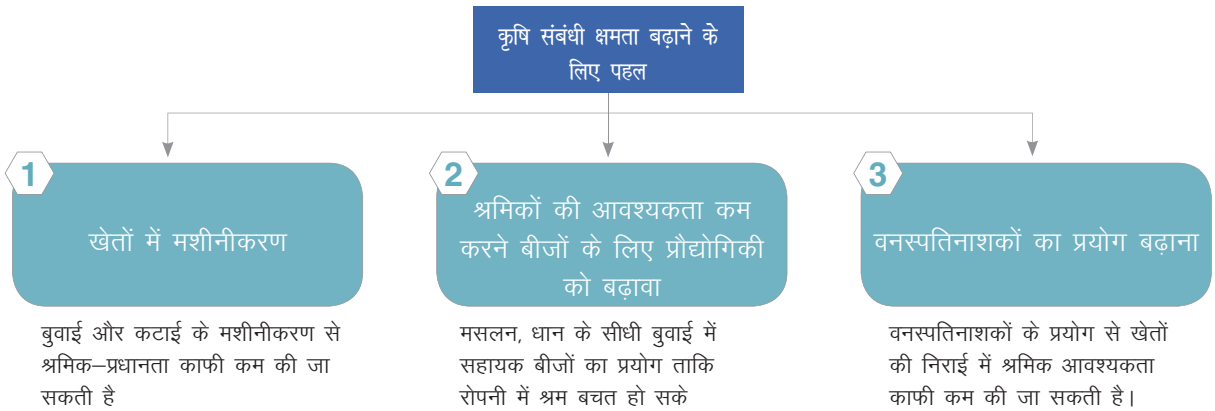
प्रौद्योगिकी अपनाने वाले खेतों की उत्पादकता का स्तर बनाम इनसे रहित खेतों की स्थिति :

फसल	प्रौद्योगिकी		प्रौद्योगिकी का अंतर	
	व्यवहृत	अव्यवहृत		
	(कि.ग्रा./हे.)	(कि.ग्रा./हे.)	(कि.ग्रा./हे.)	(प्रतिशत)
धान	5,142	4,492	650	12.6 प्र.
गन्ना	153,675	144,680	8,995	5.9 प्र.
मूँगफली	3,777	3,205	572	15.1 प्र.
कपास	1,437	1,172	265	18.4 प्र.

नोट: फसलों के लिए निम्नलिखित श्रम–मुक्त प्रौद्योगिकी/उपकरण का विचार किया गया :
धान – ट्रान्सप्लांटर, हार्वेस्टर, कोनो वीडर
गन्ना – प्लांटर, लघु ट्रैक्टर, हार्वेस्टर
कपास – ड्रिप सिंचाई, हार्वेस्टर, यूएलडी कीटनाशक
मूँगफली – बीज एवं उर्वरक ड्रिल, माइक्रो सिंचाई

स्रोत: श्रमिक अल्पता – इसकी विशालता एवं कृषि पर प्रभाव, सी. प्रभाकर, के. सीता देवी एवं एस.सेल्वम

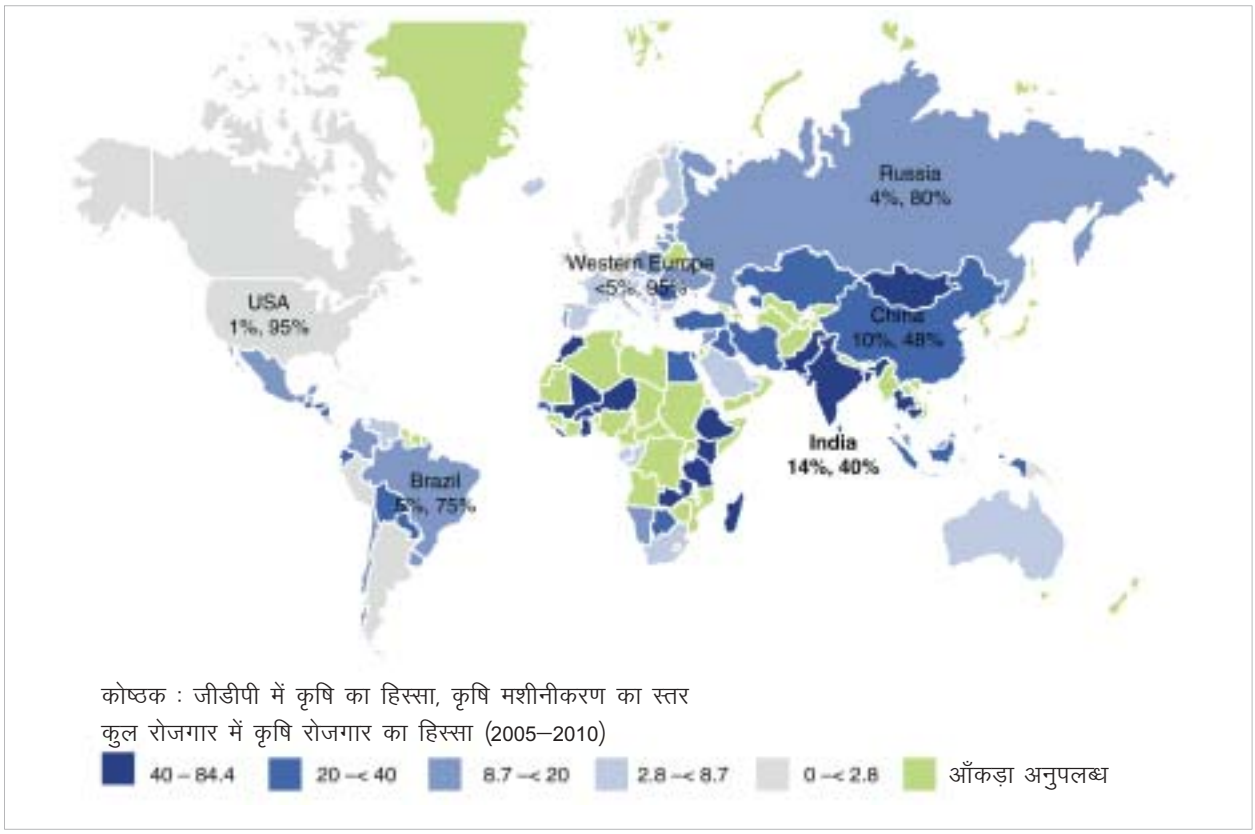
ऐसी तीन मुख्य पहल हैं जिन्हें तत्काल खेतों में श्रमिक आवश्यकता कम करने के लिए अपनाया जा सकता है, जैसा कि नीचे दिखाया गया है :



खेतों का मशीनीकरण

पूरे विश्व में खेती मशीनीकरण का विकास एक निश्चित ढर्रे पर चलता है। सबसे पहले वैसी खेती का मशीनीकरण किया जाता है जिनमें ज्यादा मेहनत और कम नियंत्रण की आवश्यकता है और अधिक नियंत्रण एवं कम मेहनत वाली खेती का मशीनीकरण बाद में किया जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि किसी भी श्रमसाध्य कार्य को मशीनों के सहारे तेजी से और कम खर्च में किया जा सकता है जबकि मानव ज्ञान को मशीनी ज्ञान में परिवर्तित करना कठिन और खर्चीला होता है। निम्नांकित चित्र से यह समझा जा सकता है कि कृषि में न्यून रोजगार और उच्च मशीनीकरण वाले अधिकतर विकसित देशों का कृषि से प्राप्त जीडीपी काफी ऊँचा है बनिस्बत भारत जैसे उन विकासशील देशों के जहाँ कृषि में रोजगार का अनुपात अधिक और मशीनीकरण की स्थिति कमजोर है।

कृषि मषीनीकरण के स्तर की तुलना में खेती में संलग्न आबादी, जीडीपी में खेती का हिस्सा



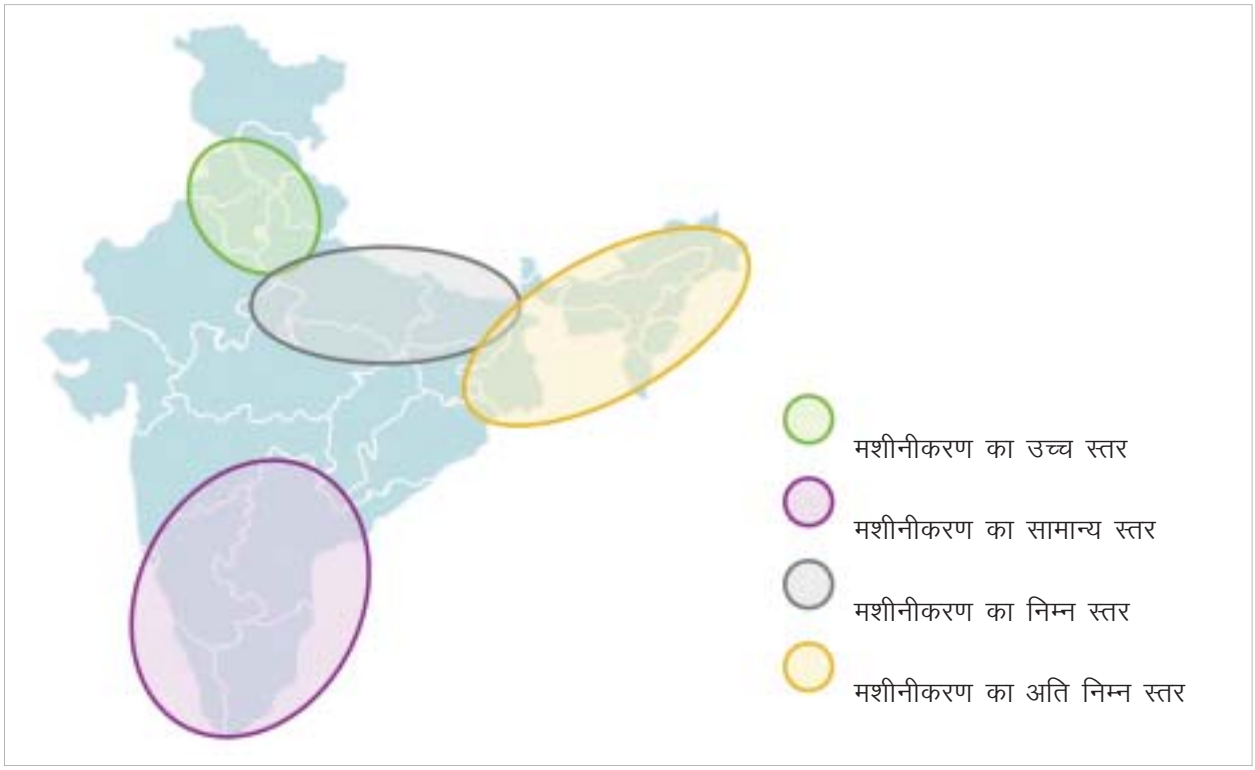
नोटः भारत के संदर्भ में वर्ष 2009–09 को माना गया है।

स्रोतः विश्व बैंक संकेतक, सीआईए तथ्य पुस्तिका, कृषि एवं सहकारिता विभाग का मशीनीकरण और कृषि प्रौद्योगिकी प्रभाग, व्यापार अर्थव्यवस्था, एफएओ ईयरबुक 2013.

भारत में मशीनीकरण

भारत में कृषि मशीनीकरण का वर्तमान स्तर न केवल अन्य विकसित देशों की तुलना में नीचा है बल्कि यह बाकी ब्रिक देशों में न्यूनतम भी है। मानव श्रम की तुलना में मशीनीकरण की उच्चतर लागत, कृषि संबंधी मशीनों के संचालन की योग्यता की कमी और छोटी जोत ऐसे कारण हैं जिनके चलते भारत अभी तक मशीनीकरण का लाभ नहीं उठा सका है। तथापि, क्षेत्रवार ढंग से देखने पर पता चलता है कि खेती में मशीनी प्रयोग की स्थिति अलग–अलग है और यह तथ्य भी उजागर होता है कि जिन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन ज्यादा है वहाँ श्रमिक अल्पता के समाधान हेतु पहले ही से विभिन्न मशीनीकृत कृषि तकनीकों को लागू किया जा चुका है।

Levels of farm mechanization in India:



- पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तराखंड ऐसे बड़े राज्य हैं जहाँ कृषि मशीनीकरण का संकेन्द्रण है जिससे उनकी उत्पादकता बढ़ती है।
- विगत दशकों में दक्षिण भारत में कृषि मशीनीकरण में उल्लेखनीय बढ़ोतरी हुई है लेकिन इसे उच्च स्तर पर अपनाने के लिए अभी भी काफी कुछ करना बाकी है।
- भविष्य के लिए उत्तर प्रदेश और बिहार संभावित राज्य हैं जहाँ सरकारी सहायता से कृषि उपकरणों का प्रयोग आरंभ किया गया है।
- पश्चिम बंगाल, ओडिशा और पूर्वोत्तर के राज्य अभी कृषि मशीनीकरण अपनाने की प्रक्रिया में हैं।

भारत में जहाँ ट्रैक्टर, ट्रैक्टर चालित उपकरण और टिलर्स मशीनीकरण के सबसे आम माध्यम हैं, वहीं अनेक प्रकार के अन्य औजार और मशीनें भी उपलब्ध हैं जिनसे किसी फसल के पूरे जीवनचक्र में श्रम की आवश्यकता कम की जा सकती है।



तथापि, विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि बीज बोने एवं पौधा लगाने, पौधा संरक्षण, कटाई और दौनी जैसी अन्य प्रक्रियाओं में मशीनीकरण का श्रमिक आवश्यकता पर भारी प्रभाव पड़ सकता है।

खेती परिचालन के आधार पर मशीनीकरण का प्रसार

परिचालन	भारत में मषीनीकरण का प्रसार
मिट्टी संबंधी कार्य और क्यारियों की तैयारी	40 प्रतिशत
बीज बोना एवं पौधा लगाना	29 प्रतिशत
पौधा संरक्षण	34 प्रतिशत
सिंचाई	37 प्रतिशत
कटाई एवं दौनी	गेहूँ एवं चावल के लिए 60–70 प्रतिशत और अन्य के लिए < 5 प्रतिशत

स्रोतः भारत में कृषि मशीनीकरण, कृषि एवं सहकारिता विभाग–कृषि मंत्रालय, 2013

बीज बोने और कटाई के लिए प्रयुक्त दो साधारण मशीनों के बारीक अवलोकन से क्रमशः समस्त फसलों के लिए ऐसे उपकरणों की उपयोगिता और घटी हुई श्रमिक आवश्यकता के मामले में किसानों को इससे होने वाले लाभों का पता चलता है।

फसल कटाई के लिए मोटरचालित सिंगल–ऐक्सल मोअर्स एवं रीपर्स

सिंगल ऐक्सल मोअर्स (घास काटने की एक फाल वाली मशीन) और रीपर्स (अनाज के पौधे काटने वाली मशीन) की शक्ति सामान्यतः 1.5 किलोवाट से 10 किलोवाट तक होती है। इन मशीनों से धान, गेहूँ और जौ की फसल काटी जा सकती है। सूखी घास–फूस और घास काटने वाली मोअर्स कटर बार्स या रोटरी कटर्स वाली होती हैं। रीपर्स में भी कटर बार्स लगते होते हैं और इन्हें आम तौर पर कतार में लगी फसल काटने के लायक बनाया जाता है। साथ ही, सामान्यतः इनमें फसल की ढेर लगाने की भी व्यवस्था रहती है। मोअर्स और रीपर्स के काम करने की गति हाथ से कटाई की अपेक्षा काफी तेज होती है। उदाहरण के लिए, एक 2.2 किलोवाट शक्ति वाली रीपर एक दिन में 2.4 हेक्टेयर धान की कटाई कर सकती है।

कम्बाइन हार्वेस्टर्स

कम्बाइन हार्वेस्टर एक प्रकार की मशीन है जो गेहूँ, जई, राई, जौ, मक्का, सोयाबीन और पटसन जैसे फसलों की कटाई करती है। इसे कम्बाइन (सम्मिश्रण) का नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि इसमें फसल कटाई से संबंधित तीन कार्य – एकत्रीकरण, दौनी और ओसौनी करने की एक साथ व्यवस्था होती है।

1980 के दशक में पंजाब में कम्बाइन हार्वेस्टर का प्रयोग कई गुणा बढ़ गया था। निम्नांकित तालिका में मानव श्रम–घंटे पर इस बढ़ोतरी का प्रभाव दिखाया गया है। कम्बाइन हार्वेस्टर का प्रभाव पैदावार बढ़ने के बावजूद मानव श्रम में समग्र रूप से 22.9 प्रतिशत की कमी के रूप में दिखाई देता है।

पंजाब में मानव श्रम पर कम्बाइन हार्वेस्टर्स का प्रभावः

	1985.86	2006.07	शुद्ध बदलाव	बदलाव का प्रतिशत
	मानव श्रम (श्रम घंटे)			
परिवार	511	319	.192	.37ण्57
स्थायी	193	153	.40	.20ण्73
आकस्मिक	385	368	.17	.4ण्42
कुल श्रम	1ए089	840	.249	.22ण्87

स्रोतः पंजाब की कृषि में श्रम माँग की गत्यात्मकता और इसके निर्धारक, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, 2013

1985–86 से 2006–07 की अवधि में पंजाब में धान के पौधारोपण को छोड़कर, गेहूँ और धान से जुड़े बाकी लगभग सभी कार्यों का पूर्ण मशीनीकरण कर दिया गया। उसी अवधि में गेहूँ और धान की फसल में कम्बाइन हार्वेस्टर के प्रयोग में बढ़ोतरी का अनुपात क्रमशः 1,189 प्रतिशत और 355 प्रतिशत के करीब था।

खेती के मशीनीकरण के लिए अपेक्षित सहयोग

भारत में परांपरागत तौर पर टुकड़े–टुकड़े जोत और मशीनों की ऊँची लागत मशीनीकरण में बाधक रही है। इसके अलावा, भारत में फसल की विशिष्ट संरचना के कारण भी दूसरे देशों के अनुरूप बनाई गई मशीनों के प्रयोग में बाधा आती है। भारत में मशीनीकृत खेती अपनाने में मदद के लिए नवीन तकनीकें लागू करनी होगी ताकि इन सभी समस्याओं का समाधान हो सके।

मशीनीकरण की कार्यक्षमता वृद्धि करना

मशीनीकरण की कार्यक्षमता और बर्बादी में कमी का समाधान निम्नलिखित तरीकों से किया जा सकता है जो परिस्थिति और फसल पर निर्भर करेगा

क) बीज प्रौद्योगिकी के माध्यम से फसलों की संरचना और उपयुक्तता में सुधार

ख) स्वदेशीकरण के माध्यम से प्रयुक्त उपकरणों की उपयुक्तता में सुधार

बीज प्रौद्योगिकी

भारतीय फसलों की संरचना दूसरे देशों में उगाए जाने वाली फसलों से अलग होती है। आयातित मशीनें भारतीय फसल संरचना के लिए हमेशा उपयुक्त नहीं होतीं और यही कारण है कि यहाँ मशीनीकरण का स्तर अपेक्षा से नीचा है। मशीनीकरण के प्रति फसल की अनुकूलता बढ़ाने के लिए अभिकल्पित (डिजाइनर) फसल संरचना विकसित करने की जरूरत है। कपास की फसल में उच्च पैदावार और मध्यम अवधि में परिपक्व होने वाला नरमा प्रकार का एचएस6 इसका एक उदारहण है। पुष्पित होने और डोडा फूटने में समकालिक होने के कारण इसे कम बार चुनने की आवश्यकता पड़ती है। इस वजह से यह मशीनीकृत चुनने के लिए उपयुक्त है। डोडा का मुँह फुला हुआ होता है और कम–से–कम गंदगी के साथ स्वच्छ कपास चुनना आसान होता है। इसकी औसत पैदावार 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है और इसमें खेत में कीड़ों–मकोड़ों और रोगों की प्रतिरोधक क्षमता होती है।

उपकरणों का स्वदेशीकरण

मुख्यतः मशीनीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न बर्बादी के कारण भारतीय खेती में मशीनीकरण के फायदे अपेक्षा से कम होते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि दूसरे देशों से आयातित मशीनी उपकरण भारतीय खेतों और फसलों के प्रकार के अनुकूल नहीं होते हैं। इससे ऐसे मशीन बनाने की आवश्यकता पैदा होती है जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हों। भारत में अनेक उपकरण निर्माताओं द्वारा अपने–अपने उत्पादों को आवश्यकतानुसार डिजाइन किया जा रहा है।

महिन्द्रा ने 23.5 हॉर्सपावर इंजन वाला शान नामक एक आधुनिक बहुउपयोगी ट्रैक्टर पेश किया है। आयात की गई अधिकतर ट्रैक्टरों में 25+ हॉर्सपावर इंजन लगी होती है जो बड़ी जोत के लिए उपयुक्त है। इसके विपरीत शान ट्रैक्टर में 25 हॉर्सपावर से कम की इंजन होती है जिसमें 750 किलोग्राम भार ढोने वाली ट्रॉली लगाकर अनेक प्रकार की गतिविधियों के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। 40 किलोमीटर प्रतिघंटा की अधिकतम रफ्तार और 23.5 हॉर्सपावर इंजन के साथ शान विशेषकर छोटी और मध्यम जोत के लिए उपयुक्त है। वर्ष 2007 में उस वर्ष के 50 उत्कृष्ट नवोन्मेशों में से एक के तौर पर शान को अमेरिकन सोसायटी फॉर ऐग्रिकल्चरल ऐंड बायोलॉजिकल इंजीनियर्स अवार्ड से सम्मानित किया गया था।

मशीनीकरण की सस्ते दर पर उपलब्धता बढ़ाना

छोटे किसानों के लिए, खासकर ऋण मिलने में कठिनाई की वजह से खेतों में उपयोग के लिए मशीनें खरीदना काफी मुश्किल हो जाता है। तथापि, सहकारिता आधारित आवश्यकतानुसार किराया पद्धति (कस्टम हाइरिंग मॉडल) की व्यवस्था की जा सकती है जिसके द्वारा प्रति प्रयोग किराया के आधार पर एक ही मशीन को अनेक किसानों द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा इस पद्धति को आरंभ किया गया है जिसके तहत सरकारी हल, जुताई मशीन, घान रोपने वाली मशीन, मुड़ी हुई प्लेट वाला पौधरोपक (इन्क्लाइंड प्लेट प्लांटर), कटाई मशीन, दौनी मशीन, पावर टिलर आदि जैसी मशीनें सरकार द्वारा निर्धारित दर पर किसानों को उपलब्ध कराई जा रही हैं ताकि वे अल्प अवधि में खेती संबंधी विभिन्न कार्य पूरा कर सकें। अगल–बगल के छोटे–छोटे खेतों के किसान जो अलग–अलग मशीनीकरण का लाभ नहीं ले पाते, सामूहिक रूप से आसान कीमत पर ऐसी पद्धति का उपयोग कर सकते हैं।

श्रम की आवश्यकता कम करने वाले बीजों के लिए प्रौद्योगिकी को बढ़ावा

उन्नत किस्म के बीजों से उन्नत अंकुरण और ज्यादा पैदावार के कारण प्रति किलोग्राम पैदावार में लगने वाले श्रम की बचत होती है। दूसरी ओर, प्रौद्योगिकी की बदौलत विशिष्ट गुणों वाले बीजों का विकास हो रहा है जिनसे खेती की प्रक्रिया में श्रम–प्रधानता कम या इस स्थिति को सीधे तौर पर बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए, चावल के मामले में नर्सरी से बिचड़ों को लाकर खेत में रोपना सबसे अधिक श्रम–प्रधान कार्य होता है। ऐसे बीज विकसित किए गए हैं जिन्हें सीधे खेत में रोपा जा सकता है और इस तरह रोपनी में लगने वाला श्रम समाप्त हो जाता है।

डायरेक्ट सीडेड राइस (डीएसआर)

डायरेक्ट सीडेड राइस यानी प्रत्यक्ष बीजारोपित चावल एक कम खर्चीला चावल स्थापन पद्धति है जिसके तहत सूखे बीज को कीचड़रहित मिट्टी में छिद्र करके घुसा दिया जाता है। इससे बिचड़े उगाने, उखाड़ने, खेतों तक ढो कर लाने और फिर बिचड़ों की रोपनी करने की सारी प्रक्रिया की जरूरत समाप्त हो जाती है क्योंकि पूर्वअंकुरित बीज की सीधे बुवाई की जाती है।

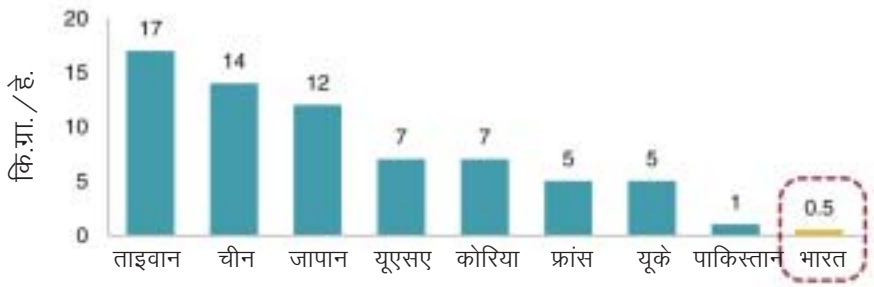
डायरेक्ट सीडेड राइस के फायदे

- डीएसआर के प्रयोग से किसान बार–बार कीचड़ करने, मिट्टी भुरने और जुताई की दरी बनाने से बच सकते हैं।
- चूँकि डीएसआर फसल सामान्य चावल से 10–15 दिन पहले परिपक्व हो जाता है इसलिए इससे चावल और उत्तरवर्ती फसलों के सामयिक स्थापन में सुविधा होती है।
- इस बीज के इस्तेमाल से पानी की 35–40 प्रतिशत बचत और पैदावार में 10 प्रतिशत बढ़ोतरी होती है।
- चूँकि चावल की खेती में बुवाई सबसे अधिक श्रम–प्रधान कार्य होता है, अतः डीएसआर से श्रमिक अल्पता की समस्या सुलझती है और मजदूरों का उबाऊपन घटता है।

वनस्पतिनाशक

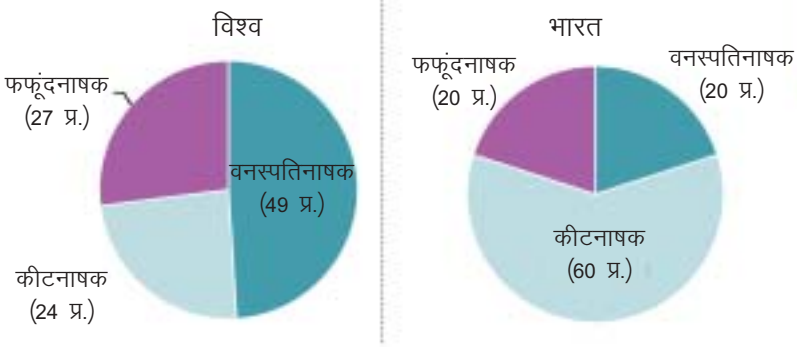
भारत में निराई (घास–फूस निकालना) का काम अक्सर हाथ से किया जाता है। बरसात के मौसम में गर्मी और उमस के कारण कार्यक्षमता घट जाती है। चावल के मामले में कुल श्रम आवश्यकता का 20 प्रतिशत से अधिक केवल निराई में लग जाता है। वैश्विक स्तर पर अवांछित घास–फूस और पौधों का विकास रोकने वाले वनस्पतिनाशकों के प्रयोग के द्वारा निराई की प्रक्रिया से छुटकारा पाया जाता है। लेकिन भारत कीटनाशकों के प्रयोग के मामले में फिलहाल अपने समकक्ष देशों से काफी पीछे है। विश्व स्तर पर कीटनाशकों के प्रयोग में वनस्पतिनाशकों का बड़ा हिस्सा है, लेकिन भारत में कुल बाजार में इसकी हिस्सेदारी महज 20 प्रतिशत है। यह प्रचलन अक्सर अतिरिक्त श्रमिक वाले देशों में देखा जाता है। लेकिन श्रमिक उपलब्धता का एक समस्या बन जाने के कारण किसान धीरे–धीरे वनस्पतिनाशक का इस्तेमाल करने लगते हैं और हाथ से निराई करना बंद कर देते हैं। ऐसा प्रचलन दक्षिण कोरिया, ताइवान और फिलिपीन्स जैसे दूसरे एशियाई देशों में भी देखा गया है।

2011 में विश्व स्तर पर कीटनाशक का प्रयोग



स्रोत : फिलिप कैपिटल एवं बीएमआई रिपोर्ट

2011 में कीटनाशक खपत का विश्लेषण



भारत में कीटनाशक की खपत कम है जिसमें वनस्पतिनाशक का अनुपात केवल 20 प्रतिशत है।

स्रोत: फिलिप कैपिटल रिपोर्ट

विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि श्रम पर निर्भरता कम करने के लिए घास–फूसनाशक एक कारगर तरीका है। फसलों की पैदावार पर भी इसका सकारात्मक असर होता है क्योंकि इससे खेतों में खेती संबंधी दूसरे कारवाइयों पर ध्यान देने का ज्यादा समय और संसाधान उपलब्ध होता है। एक प्रयोगिक अध्ययन बताता है कि वनस्पतिनाशकों का इस्तेमाल करने के बाद चालव, गन्ना और मक्का के लिए श्रमिक की आवश्यकता में कमी आती है। इस प्रयोग के दौरान निराई के लिए श्रमिक आवश्यकता में लगभग 22 प्रतिशत तक कमी देखी गई जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण श्रमिक आवश्यकता में भी लगभग 8 प्रतिशत तक कमी हुई।

वनस्पतिनाशक के इस्तेमाल वाले खेतों और इससे वंचित खेतों की तुलनात्मक श्रमिक आवश्यकता :

गतिविधि	वनस्पतिनाशक		वनस्पतिनाशक भिन्नता	
	अपनाया गया	नहीं अपनाया गया		
	(श्रम घंटे)	(श्रम घंटे)	(श्रम घंटे)	(प्रतिशत)
आरंभिक जुताई	102	87	(15)	–14.5 प्र.
खाद डालना	28	41	13	48.4 प्र.
रोपना	201	213	12	6.2 प्र.
निराई	194	237	43	22.3 प्र.
सिंचाई	158	144	(14)	–8.7 प्र.
पौधा रक्षण	17	10	(7)	–41.6 प्र.
फसल कटाई	215	257	42	19.6 प्र.
कुल श्रम घंटे	914	989	75	8.2 प्र.

नमूना अध्ययन

खरपतवार अनुसंधान निदेशालय ने गेहूँ के खेत में विशेषकर घासनुमा खरपतवार और चौड़े पत्तों वाले खरपतवार के लिए वनस्पतिनाशक {पहले 25–30 डीएएस पर क्लोडिनेफॉप (60 ग्राम/हे.) और इसके बाद 30 डीएएस पर 2, 4–डी (500 ग्राम/हे.)} का प्रयोग करके हाथ से निराई करने की तुलना में इसका प्रभाव दिखलाया है।

	वनस्पतिनाशक के प्रयोग से	वनस्पतिनाशक के प्रयोग के बिना
प्रति हेक्टेयर उत्पादकता	38–40 क्विंटल/हेक्टेयर	25–30 क्विंटल/हेक्टेयर
प्रति हेक्टेयर उत्पादन लागत	9,000–10,000 रुपये	9,000–9,500 रुपये
प्रति हेक्टेयर शुद्ध आय	40,000 रुपये (1,000 रुपये प्रति क्विंटल पर 40 क्विंटल)	28,500 रुपये (950 रुपये प्रति क्विंटल पर 30 क्विंटल)

वनस्पतिनाशक का प्रयोग किए बगैर गेहूँ का प्रति क्विंटल मूल्य कम था। ऐसा खरपतवार के बीजों जैसी गंदगी की मौजूदगी के कारण हुआ।

स्रोतः खरपतवार अनुसंधान निदेशालय

कृषि को अधिक लाभकारी बनाना

किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र की उत्पादकता पर ध्यान केंद्रित करना सबसे सीधा तरीकों में से एक है जिसके द्वारा कृषि को लाभकारी बनाया जा सकता है।

वर्ष 2012 में चुनिंदा अनाजों की पैदावार (विश्व औसत से संबद्ध)



नोटः एशिया में चीन शामिल है

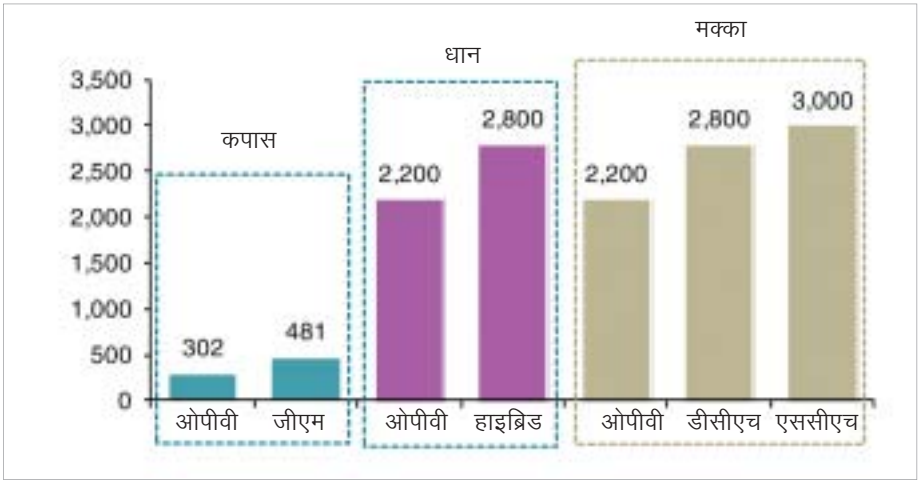
स्रोतः संयुक्त राष्ट्र संघ का खाद्य एवं कृषि संगठन, एफएओस्टैट

उत्पादकता में दूसरे दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों से तुलना करें तो भारत फिलहाल पिछड़ा हुआ है। भारत की प्रति हेक्टेयर पैदावार चीन, वियतनाम, इंडोनेशिया, मलेशिया और थाईलैंड के औसत का आधा है। फलस्वरूप, यहाँ कृषि आय निम्न है और इसकी वृद्धि धीमी है। भारत में 2000 और 2010 के बीच खेतिहर मजदूरों की उत्पादकता 3.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष के दर से बढ़ी है जबकि इसकी तुलना में इसी अवधि में निर्माण और सेवा क्षेत्र की श्रम उत्पादकता में प्रतिवर्ष लगभग 5.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि क्षेत्र रोजगार में लगभग 20 प्रतिशत की कमी का भी सामना कर रहा है।

इस खण्ड में उन तकनीकी उत्तोलकों की चर्चा की गई है जिनसे भारतीय कृषि की पैदावार और उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिल सकती है। उत्पादकता बढ़ने से छोटे जोतदारों, दिहाड़ी मजदूरों और संबंधित व्यवसायियों समेत कृषि से जुड़े संपूर्ण ग्रामीण परितंत्र को लाभ होता है।

बीजों में अनुसंधान प्रेरित सुधार

बीज प्रौद्योगिकी द्वारा पैदावार में बढ़ोतरी :



नोटः ओपीवीः ओपन पॉलिनेटेड वेराईटी, जीएमः जेनेटिकली मोडिफाइड, एससीएचः सिंगल क्रॉस हाइब्रिड, डीसीएचः डबल क्रॉस हाइब्रिड

स्रोतः राष्ट्रीय बीज योजना, कृषि एवं सहकारिता विभाग

अनुमान है कि यदि सभी कारक यथावत रहें तो भी केवल उत्तम बीजों के इस्तेमाल से ही फसल की पैदावार 15–20 प्रतिशत तक बढ़ सकती है। इस तरह प्रयुक्त बीजों की गुणवत्ता भी कुछ हद तक विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में पैदावार में भिन्नता का एक कारण है। कृषि विज्ञान संबंधी नवीनता (पौधों के बीच दूरी, जुताई आदि) के साथ बीज प्रौद्योगिकी के मेल से अनाज की पैदावार पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ सकता है।

गहन खेती

गहन खेती एक कृषि उत्पादन पद्धति है। इसकी विशेषता यह है कि की प्रति इकाई अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए इसमें अधिक मात्रा में पूँजी, श्रम जैसे निवेश या भूमि क्षेत्र के सापेक्ष अधिक मात्रा में कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति में उत्पादन की लागत में बड़े पैमाने की किफायत के लिए कृषि संबंधी मशीनों, खेती की पद्धतियों और तकनीकों में नवीनता की आवश्यकता होती है। खेती की ऐसी तकनीकों से उत्पादकता में भारी बढ़ोतरी हासिल की जा सकती है। इस प्रकार की एक उत्पादकतावर्द्धक तकनीक है एसआरआई (सिस्टेमेटिक राइस इन्टेन्सीफिकेशन) जिसे पैदावार बढ़ाने के उद्देश्य से देश के विभिन्न हिस्सों में अपनाया जा रहा है।

मामले का अध्ययन

सिस्टेमेटिक राइस इन्टेन्सीफिकेशन (एसआरआई) एक कार्यपद्धति है जिसका लक्ष्य निम्नलिखित सिद्धान्तों के द्वारा चावल की पैदावार बढ़ाना है :

- धान के खेत की मिट्टी को संतृप्त रखने के बदले नम रखा जाता है क्योंकि ऐसा करने से जड़ों की वृद्धि अच्छी होती है और भूमि में पाए जाने वाले वायुजीवी जीवाणुओं की वृद्धि एवं विविधता को बल मिलता है। इसमें जल की आवश्यकता आधा कम हो जाती है।
- धान के पौधों को एक–एक करके और पर्याप्त दूरी पर रोपा जाता है ताकि जड़ें ज्यादा फैलें, पौधे अधिक छतनार हों और सभी पत्तों द्वारा प्रकाश संश्लेशण की क्रिया हो सके, एवं
- धान के छोटे बिचड़े जो 15 दिनों से कम के और केवल दो पत्तियों वाले होते हैं, शीघ्रतापूर्वक, कम गहरे और सावधानीपूर्वक रोपे जाते हैं ताकि जड़ों को क्षति और रोपाई के झटके से बचाया जा सके।

एसआरआई के साथ उर्वरकों और मशीनीकरण जैसी अन्य तकनीकों का भी प्रयोग करने से पैदावार पर प्रभाव बढ़ जाता है।

आँध्र प्रदेश :

आँध्र प्रदेश में वर्ष 2003 के खरीफ के दौरान सभी 22 जिलों में एसआरआई लागू की गई। इस पद्धति को अपनाने से राज्य को अनेक फायदे हुए।

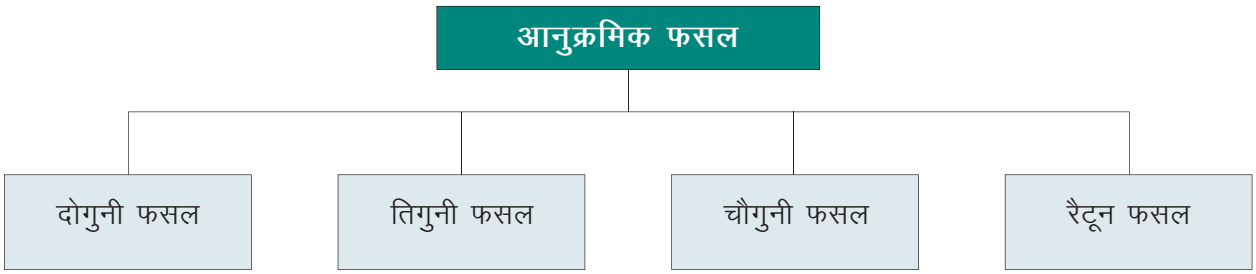
- अनाज के दानों की संख्या में 38–66 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई और कुल मिलाकर परंपरागत जल भराई की तुलना में कुल मिलाकर 48 प्रतिशत की औसत वृद्धि हुई।
- अनाज की पैदावार में कुल मिलाकर 25 प्रतिशत की औसत वृद्धि के साथ 21 से 30 प्रतिशत के बीच बढ़ोतरी हुई।
- परांपरागत कृषि पद्धतियों की तुलना में किसानों के लिए एसआरआई कृषि पद्धति 6–19 प्रतिशत सस्ती साबित हुई।
- सकल आय में औसत 28 प्रतिशत और शुद्ध आय में 65 प्रतिशत तक वृद्धि हुई।

आनुक्रमिक फसल (सिक्वेन्शल क्रॉपिंग)

आनुक्रमिक फसल एक ऐसी पद्धति हे जिसके तहत एक ही स्थान में दो या दो से अधिक फसलें एक ही सीजन में उगाई जाती हैं जहाँ बाद वाली फसल को पहली वाली फसल के कट जाने के बाद लगाया जाता है।

इससे प्रकाश, पोषक तत्व, मिट्टी और जल समेत वृद्धिकारक संसाधनों का अधिक प्रभावशाली उपयोग होता है। बढ़ती आबादी के कारण भूमि पर प्रति इकाई उत्पादकता, इकाई अवधि और प्रयुक्त इकाई संसाधनों को बढ़ाने का दबाव बढ़ता है।

ऐसे अनेक फसल प्रणाली है जिनका अनुसरण किया जा सकता है:



उत्पादन के कारक तत्वः

बेहतर खेतों से कृषि व्यवसाय तक लिंकेज

नवोन्मेशी खेती से कृषिव्यवसाय तक लिंकेज यानी संपर्क से बिचौलियों का खात्मा (अमध्यस्थीकरण) होगा और पैदावार की खरीद की परेशानियाँ दूर होंगी। इस प्रकार की लिंकेज से छोटे किसानों की सौदाबाजी क्षमता बढ़ती है और बाजार से उनकी आय में सुधार होता है। इस प्रकार कृषिगत व्यावहारिकता में वृद्धि होती है।

खेतों से कृषिव्यवसाय तक संपर्क को मजबूत बनाने की तीन अलग–अलग पद्धतियाँ हैं :

अनुबंधित खेती

किसान ⇕ **क्रेता**

खरीदार और किसान पूर्वनिर्धारित मूल्य और उत्पादन सहायता के बदल में मात्रा, गुणवत्ता, सुपुर्दगी अवधि की शर्तों पर आपस में अनुबंध करते हैं।

- यह मुख्यतः क्रेता नियंत्रित पद्धति है जिसमें पेप्सीको और आईटीसी जैसे बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियाँ पहल करती हैं।
- इस प्रकार किसान बिचौलियों की उपेक्षा करके सीधे बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियों के हाथों अनाज बेच सकते हैं।
- किसानों को अपनी पैदावार के लिए पूर्वनिर्धारित कीमत और प्रौद्योगिकी सहयोग मिलता है जबकि कंपनियों को सुनिश्चित आपूर्ति मिलती है।

कृषि सहकारी समितिया

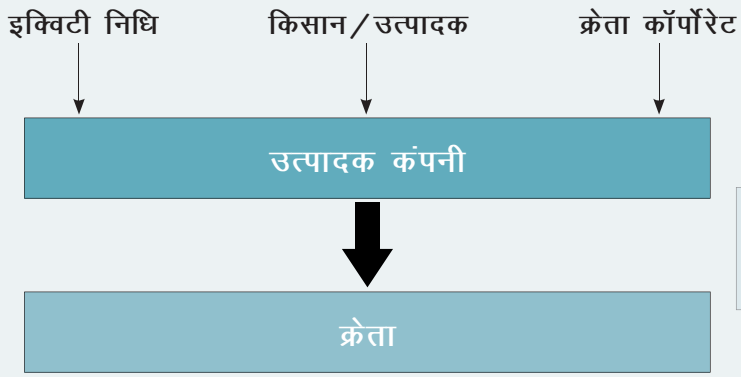
अनेक किसानों की पैदावार

सहकारी समिति ⇕ **क्रेता**

सहकारी समिति छोटे किसानों और क्रेताओं के बीच संयोजक का काम करती है। यह किसानों के लिए आदेष प्राप्त करने, लदाई और परिवहन, बिल बनाने, संग्रह और भुगतान सेवाएँ प्रदान करती है।

- यह मुख्यतः उत्पादक नियंत्रित पद्धति है जिसमें किसान एक साथ मिलकर सहकारी समिति बनाते हैं।
- इससे क्रेता को अलग–अलग किसानों के बजाय समूह के साथ बात करने की सुविधा मिलती है।
- सहकारी समिति किसानों को अतिरिक्त कार्यों के लिए सहयोग देते हुए बिचौलिए की भूमिका अदा करती है।
- भारत में फिलहाल अधिकतर कृषि सहकारी समितियाँ सरकार द्वारा नियंत्रित हैं जहाँ दुग्ध उत्पाद के अलावा और क्षेत्रों में सीमित सफलता मिली है।

किसान इक्विटी पद्धति



आपूर्ति श्रृंखला पर क्रेताओं का मजबूत नियंत्रण रहता है जबकि उत्पादकों को लाभ में हिस्सा मिलता है।

- इससे उत्पादक कंपनी में उत्पादक का प्रत्यक्ष हिस्सेदारी सुनिश्चित होती है।
- क्रेता कंपनी और किसानों के लिए आपसी बातचीत करना आसान होता है।
- उत्पादक की वचनबद्धता बढ़ती है।
- इसकी बनावट के कारण उत्पादक कंपनी पर प्रतिबंधी उधारी और जमा नियमों का दबाव कम रहता है।

अध्याय 4



आगे का रास्ता

हालाँकि कृषि राज्य के अधिकार का विषय होता है तथापि केंद्र द्वारा लागू नीतियों का भी इस पर प्रभाव पड़ता है जैसा कि मनरेगा के उदाहरण में देखा जा सकता है जिसने कृषि को प्रभावित किया है। आगे, राज्य सरकार और केंद्र सरकार कृषि को उत्पादक और आकर्षक बनाने के लिए अनेक कदम उठा सकती हैं :–

राज्य सरकारः

- भूमि पट्टा बाजार को मुक्त करना
- दस्तूरी किराया पद्धति
- एपीएमसी में सुधार

केंद्र सरकार :

- मनरेगा में सुधार
- अनुसंधान पर खर्च

राज्य सरकार के पहल

भूमि पट्टा बाजार मुक्त करना

विगत वर्षों के दौरान भारत में जोत का आकार घटता गया है जो जोत के टुकड़े–टुकड़े होने के कारण 2001 के 1.33 हेक्टेयर से घटकर 2011 में 1.13 हेक्टेयर पर आ गया । भारत में विभिन्न काश्तकारी नियमों के कारण जोत की चकबंदी बाधित हुई है जो इस क्षेत्र के लिए एक जरूरी कारवाई है। जोत का आकार बढ़ाने से सबसे बढ़कर निम्नलिखित फायदे हो सकते हैं :

1. मशीनीकरण की व्यावहारिकता में बढ़ोतरी
2. किसानों के लिए ऋण की सुलभता में सुधार
3. प्रति किसान रिटर्न में वृद्धि।

कृषि संबंधी काश्तकारी नियमों का विस्तार और स्वरूप विभिन्न राज्यों में अलग–अलग है। हालाँकि, इस मामले में राज्यो को चार सामान्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

- समस्त कृषि काश्तकारी पर परोक्ष प्रतिबंध : केरल, जम्मू एवं कश्मीर।
- कृषि काश्तकारी पर सामान्य रोक लेकिन विधवा, अवयस्क, सीमांत जोतदार और/अथवा सैन्यबलों के सदस्यों आदि के लिए कतिपय छूट : कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, ओडिशा और आँध्र प्रदेश का तेलंगाना क्षेत्र।
- काश्तकारी पर स्पष्ट रोक का नहीं होना लेकिन काश्तकारों को या तो स्थायी काश्तकार के रूप में या एक निर्धारित अवधि के भीतर क्रय अधिकार के माध्यम से काश्तकारी की जमीन पर संरक्षित अधिकार देकर काश्तकारी को निरूत्साहित करना : पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार और असम।
- काश्तकारी पर कुछ प्रतिबंध, हालाँकि काश्तकारी की न्यूनतम सीमा और/अथवा अधिकतम लगान स्तरों का निर्धारण : राजस्थान, तमिलनाडु और आँध्र प्रदेश के तेलांगाना के बाहर के क्षेत्र।

जैसे–जैसे गैर–कृषि अर्थव्यवस्था में अवसर बढ़ते हैं, काश्तकारी बाजार में प्रवासन, विशेषज्ञता और निवेश जैसी आजीविका संबंधी संभावनाओं के व्यापक विकल्प सुलभ होते हैं। ऐसे परिवारों को इससे फायदा होगा जो गैर–कृषि आजीविका अपनाना चाहते हैं यदि वे अपनी जमीन किसी दूसरे को पट्टे पर देने की स्थिति में हों। छोटे खेतों में पूँजी का विवेकपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने के लिए भूमि पट्टा बाजार को मुक्त करना उचित होगा ताकि बाजार निर्देशित ईष्टतम आकार की जोत विकसित हो सके और भूमि, श्रम एवं पूँजी का सुसंगत उपयोग सुनिश्चित की जा सके।

प्रस्तावित सुधारों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं

- यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि भूस्वामी को भूमि पट्टा देने की प्रक्रिया में अपनी जमीन से बेदखल नहीं होना पड़े और यह भी कि पट्टाधारी को काश्तकारी का दावा नहीं रहे।
- पट्टे की अवधि को 10–15 वर्षों तक लंबा और पट्टे वाली जमीन के आकार पर सीमा हटाया जाना चाहिए ताकि खेती को ज्यादा उत्पादक बनाने के लिए कॉर्पोरेट कंपनियों को प्रौद्योगिकी में निवेश करने में सुविधा हो।
- ऐसी सुनिश्चित व्यवस्था होनी चाहिए कि पट्टे की अवधि समाप्त होने पर जमीन स्वतः किसान/भूस्वामि के अधिकार में आ जाए।

इस कदमों से किसानों और निजी क्षेत्र की कंपनियों को उत्पादकता एवं कृषि पैदावार की उत्तमता बढ़ाने के लिए खेतिहर भूमि के समूहीकरण (चकबंदी) और कृषि प्रौद्योगिकी, ड्रिप सिंचाई एवं सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों में निवेश करने में आसानी होगी।

कस्टम हायरिंग (आवश्यकतानुसार भाड़े पर मशीन का प्रयोग)

कस्टम हायरिंग पद्धतियों को राज्य सरकारों द्वारा मुस्तैदी से लागू किया जा सकता है जिससे कि किसानों को प्रति इस्तेमाल के हिसाब से किराए पर कृषि मशीनें उपलब्ध हो सकें। इससे किसानों की पूँजी लागत में राहत मिलती है और साथ ही उन्हें खेती को मशीनीकृत करने का अवसर मिलता है। यह विशेषकर लघु और सीमांत किसानों के लिए फायदेमंद होगा जो छोटे जोतदार होने के कारण कृषि मशीनें खरीदने में असमर्थ हैं।

कृषि संबंधी विकास, विशेषकर खेतिहर मजदूरों की घटती संख्या के संदर्भ में निरंतरता के लिए कृषि का मशीनीकरण अनिवार्य है। तथापि, विशेषकर जमीन की तैयारी और फसल कटाई जैसे कार्यों के लिए प्रतिकूल 'बड़े पैमान की लागत' के कारण लघु और सीमांत किसानों की बड़ी आबादी अभी भी कृषि में मशीनीकरण का पूरा लाभ उठाने की स्थिति में नहीं है। उदाहरण के लिए, गन्ने की खेती में श्रमिक की गंभीर कमी के कारण गन्ना हार्वेस्टर और प्लांटर जैसी मशीनों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। लेकिन, इन उपकरणों की लागत के कारण भारत में बड़े किसानों के लिए ये अव्याहारिक हैं।

खेतों का औसत आकार लगातार घटने के कारण अधिकाधिक खेत प्रतिकूल श्रेणी के तहत आ जायेंगे जिसके चलते किसान के लिए कृषि मशीनों को व्यक्तिगत तौर पर खरीदना और भी खर्चीला होगा। ऐसी स्थिति में, भारत में कृषि मशीनीकरण की गति तेज करने के लिए कस्टम हायरिंग सबसे अनुकूल पद्धति लगती है। इस पद्धति से कृषि मशीनीकरण को 'किसान मात्र' के स्वामित्व के बंधन से मुक्ति मिलेगी और सेवाओं के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ेगी।

हालाँकि, भारत में कतिपय कृषि मशीनों की कस्टम हायरिंग व्यवस्था प्रचलित है, तथापि वर्तमान स्थिति में यह काफी असंगठित और छिटपुट अवस्था में है। इसके पीछे के कारणों से कुछ तथ्य निकलते हैं। पहला, चूँकि यह गतिविधि पूँजी–प्रधान है इसलिए कस्टम हायरिंग केंद्रों में कार्यकुशल संचालन के लिए एक न्यूनतम पैमाना तय करने की आवश्यकता है।

कृषि में माँग का स्वरूप मौसमी होने के कारण संपदा का न्यून उपयोग हो पाता है जिसकी वजह से इनमें उत्पादन पूर्व तैयारी में लंबा समय लगता है। दूसरे, इन केंद्रों को स्थापित करने के सिलसिले में लघु उद्यमियों के प्रवेश की राह में काफी बाधाएँ हैं। लघु उद्यमियों की ऋण योग्यता कम होती है और उन्हें बढ़ावा देने के लिए कोई विशिष्ट प्रोत्साहन नीति भी नहीं है। देश में संगठित कस्टम हायरिंग की सफलता निर्धारित करने वाला तीसरा बड़ा कारक बैंकों की ऋण नीति को माना जा सकता है। आम तौर पर, ऋण देने के लिए बैंकों द्वारा कृषि उपकरणों को बंधक रखने के अलावा भारी समर्थक जमानत पर जोर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उद्यमियों की ओर से जवाबी क्रिया में कमी आ रही है।

अभी तक के नीतिगत हस्तक्षेपों का ध्यान कृषि उपकरणों के व्यक्तिगत स्वामित्व पर केंद्रित रहा है जो कुल मिलाकर देश में कृषि मशीनीकरण का अपेक्षित स्तर हासिल करने में असफल साबित हुआ है। देश में कस्टम हायरिंग को तेज करने की आवश्यकता है जो मूल्य संचालित प्रवृत्ति से काम करती है और एक ही बार ग्राहकों को सेवा देने तक सीमित नहीं होती। अनुकूल नीतिगत ढाँचा तैयार करने के लिए विभिन्न विकल्प खोजने की तत्काल जरूरत है ताकि देश में व्यावसायिक रूप से कस्टम हायरिंग केंद्रों की स्थापना को प्रोत्साहन मिल सके।

मामले का अध्ययन

मध्य प्रदेश सरकार के कृषि विभाग ने कृषि को बढ़ावा संबंधी अनेक कदम उठाए हैं जिनमें से एक है कस्टम हायरिंग सेवा। किसानों और अन्य संस्थानों को गहरी जुताई, भूमि समतलीकरण, हल्की खेती आदि के लिए भाड़े पर मशीनें दी जाती हैं।

- किसानों को भाड़े पर देने के लिए भारी मोल्ड बोर्ड हलों के साथ 37 छल्ले जैसे (चेन टाइप) ट्रैक्टर उपलब्ध हैं। ये मशीनें गहरी जुताई करती हैं।
- निदेशालय के पास अपने 76 बुल्डोजरों का बेड़ा है जिनका उपयोग समतलीकरण, खेतों में मेड़ बनाने और जल संग्रहण संरचनाओं (तालाबों) के निर्माण के लिए किया जाता है।
- हल्की जुताई और अन्य कृशि संबंधी कार्यों के लिए उपकरणों से लैस 135 ह्विल ट्रैक्टरों का बेड़ा उपलब्ध है।

इन मशीनों को छोटी अवधि में खेती संबंधी विभिन्न कार्य संपादित करने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित दर पर आवश्यकता के अनुसार किसानों को भाड़े पर दिया जाता है।

एपीएमसी में सुधार

विभिन्न राज्य सरकारों ने ऐग्रिकल्चरल प्रोड्युस मार्केट कमिटी (एपीएमसी) यानी कृषि उत्पाद बाजार समिति अधिनियम लागू किया था जिसका उद्देश्य मंडियों का नेटवर्क तैयार करना था जहाँ मूल्यों का निर्धारण नीलामी के द्वारा हो सकता है। इसका प्रमुख कारण किसानों को सूदखारों और व्यापारियों के चंगुल से बचाना था। इन मंडियों में व्यापारियों द्वारा कारोबार करने और किसानों एवं खुदरा कारोबारियों द्वारा भुगतान किए गए कमीशन से राजस्व पैदा करने के लिए व्यापारियों को सरकारी अनुज्ञप्ति लेना आवश्यक किया गया। ऐसी व्यवस्था की गई कि सारे विक्रय और क्रय इन्हीं मंडियों से हो सकें।

परन्तु, एपीएमसी व्यवस्था गलत धंधों का अड्डा बन जाता है। बाजार में बिचौलियों और आढ़तियों के साँठ–गाँठ से किसानों का अक्सर शोषण होता रहा है। नीलामी नहीं की गई और लेन–देन से प्राप्त टैक्स कहीं और चला गया। इसके कारण कृषिक बाजार में सरकार की भूमिका पर सवाल उठने लगे और अंततः वर्ष 2003 में मॉडल एपीएमसी अधिनियम बना। इसके अंतर्गत निजी व्यापार बढ़ाने के अनेक प्रावधान हैं लेकिन इन प्रावधानों को आगे बढ़ाने में अभी भी सरकार की बड़ी भूमिका है।

उदाहरण के तौर पर पंजाब के अपनी मंडी का जिक्र किया जा सकता है जहाँ किसान अपने उत्पाद सीधे खरीदारों या उपभोक्ताओं के हाथ बेचते हैं। एपीएमसी के द्वारा बाजार प्रांगण, प्रकाश आदि जैसे बुनियादी सुविधाएँ मुहैया की जाती हैं। संबंधित विभागों की खेत स्तर के विस्तार की सेवाएँ भी ली जाती हैं जिससे अपनी मंडी से जुड़े किसानों को चल रही सरकारी योजनाओं का लाभ मिलना सुनिश्चित होता है। उपलब्ध लाभों में निवेश अनुदान, उन्नत किस्म के बीज और बैंक से उचित ब्याज दर पर ऋण आदि की सुविधाएँ सम्मिलित हैं। चंडीगढ़ समेत राज्य के लगभग 26 शहरों और कस्बों में अपनी मंडीयाँ संचालित की जा रही हैं।

ऐसे नवोन्मेशी प्रयास हमेशा सफल नहीं होते। कर्नाटक के रैता सांठे में किसानों द्वारा ग्राम पंचायत या स्थानीय प्राधिकारियों के प्रबंधन में सीधे उपभोक्ताओं के हाथों बिक्री करनी पड़ती थी। परन्तु यह परियोजना कभी आरंभ नहीं हो पाई क्योंकि सांठे बेहतर संपर्क से वंचित और शहर से काफी दूर है।

मामले का अध्ययन

गुजरात को 1999–2000 में सुखाड़ का सामना करना पड़ा था लेकिन यह हालत सुधारने में सफल रहा और वहाँ कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों (वानिकी और मत्स्य पालन समेत) में 8.2 प्रतिशत सालाना वृद्धि दर्ज की गई।

वर्ष 2005 के बाद से राज्य सरकार द्वारा सालाना कृषि महोत्सव आयोजित किया जा रहा है जहाँ किसान, वैज्ञानिक, सरकारी अधिकारी और मंत्रीगण एक जगह एकत्र होकर आगे का रास्ता तय करते हैं। इसके बाद महीने भर का जन संपर्क अभियान चलाया जाता है जिसके तहत सरकारी विभाग का कृषि रथ एक–एक गाँव में घूमकर जानकारी प्रदान करता है और चुनिंदा किसानों को उपयोगी सामग्रियाँ देकर नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल का तरीका बताया जाता है। साथ ही, विभिन्न विभागों के कर्मचारी गाँवों में जाकर किसानों को विस्तार सेवाएँ मुहैया करते हैं।

सरदार सरोवर परियोजना के माध्यम से और सामुदायिक विकेंद्रित स्रोतों पर ध्यान देकर नहरों से सिंचाई की संभावना पैदा की गई। अनुदानों के माध्यम से सूक्ष्म सिंचाई को बढ़ावा दिया गया है जिनके फलस्वरूप सूक्ष्म सिंचाई के तहत सिंचित क्षेत्र 2003–04 के 20,000 हेक्टेयर से बढ़कर 2009–10 में 1,40,000 हेक्टेयर हो गया। आवश्यक कृषिक बुनियादी संरचनाओं के निर्माण हेतु प्रयास किए गए जिसमें खेतों में बिजली पहुँचाने के लिए फीडर लाइनें और लगभग सभी गाँवों तक संपर्क सड़कों का निर्माण किया गया। अनुसंधान और विकास को पुनरुज्जीवित करने के उद्देश्य से किसानों के साथ जानकारी विनिमय पर ध्यान देते हुए गुजरात कृषि विश्वविद्यालय को चार छोटे–छोटे संस्थानों में विभाजित किया गया। गुजरात में कृषिक पैदावार बाजार समिति सुधार संबंधी कानून भी लागू किए गए हैं।

केन्द्र सरकार की पहलकदमियाँ

मनरेगा में सुधार

ग्राम पंचायतों के लिए अनुशंसाएँ: वर्तमान में ग्राम पंचायतों के पास अपने–अपने गाँवों में होने वाले कार्यों के चयन हेतु सीमित अधिकार उपलब्ध हैं। ग्राम पंचायतों द्वारा मौसमी समय–सारणी लागू करने की सुविधा मिलने से भूमिहीन मजदूरों को मनरेगा के तहत और खेतों में पर्याप्त समय मिलेगा। इससे उन गतिविधियों को लागू किया जा सकेगा जो कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए जरूरी हैं। जैसे कि निराई, कृषि को प्रभावित करने वाले उपयुक्त अधिग्रहण क्षेत्रों में सिंचाई सुविधा, वर्षा पर आश्रित और सुखाड़ प्रवण (ड्राउट प्रोन) क्षेत्रों आदि की पहचान हो सकेगी। इससे जनसमुदाय के लाभ के लिए कृषि परियोजनाओं पर सीधा असर होगा।

मनरेगा को कृषि–अभिमुख बनाने के लिए इसके वर्तमान ढाँचे में बदलाव की अनुशंसाएँ: कृषक समुदाय की माँग रही है कि मनरेगा के तत्वावधान में कृषिक गतिविधियों को शामिल किया जाए। ऐसे सुझाव दिए गए हैं कि भारत सरकार मनरेगा की कार्य–सूची में निराई, सिंचाई, बुवाई और फसल कटाई जैसे कतिपय कृषिक कार्यों को शामिल करके विशिष्ट फसल संबंधी कार्यों के लिए श्रमिक उपलब्ध कराए। इससे बढ़ती मजदूरी दर से किसानों को थोड़ी राहत मिलेगी और साथ ही भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को रोजगार भी मिलेगा।

मनरेगा में कृषि कार्यों के संभावित विलय का लाभ बड़े किसान नहीं हथिया लें, इसे रोकने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं :

- इलाके में लघु और सीमांत किसानों के खेतों की पहचान करके आवश्यक श्रमिकों का आबंटन किया जाए जिससे महँगे पारिश्रमिक के बोझ से राहत मिलेगी।
- कृषि संबंधी कार्य करने वाले मजदूरों को दी जाने वाली मजदूरी का एक हिस्सा बड़े किसानों द्वारा वहन किया जाए।

अनुसंधान में निवेश

वर्ष 2009 में भारत के कृषिक जीडीपी का 0.4 प्रतिशत ही कृषिक अनुसंधान पर खर्च किया गया। यह ब्राजील (1.8 प्रतिशत) और उप सहारा अफ्रिका (0.6 प्रतिशत) द्वारा खर्च की तुलना में कम है। यह अनुसंधान पर ध्यान के अभाव का लक्षण है, जिसका परिणाम अपेक्षाकृत कम जानकारी के रूप में होता है। इसके साथ–साथ, वर्तमान जानकारियों को भी किसानों तक प्रभावकारी ढंग से नहीं पहुँचाया गया है।

कृषि विभाग के पास प्रत्येक एक मिलियन किसानों पर 751 विस्तार कर्मचारी हैं जो निजी किसान संघों से प्राप्त 926 और उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा नियुक्त 1,078 की संख्या से कम है। ऐसे अनेक तरीके हैं जिनके द्वारा सरकार कृषि अनुसंधान और इसकी उपलब्धता में तेजी जा सकती है, जैसे कि –

1. अलग–अलग अनुसंधान संस्थानों के बीच समन्यव बढ़ाना।
2. विस्तार सेवाओं में किसानों की सक्रियता बढ़ाना।
3. निजी क्षेत्र की सहभागिता बढ़ाना।

गरीब किसानों के लिए और दूरस्थ स्थानों में सरकारी विस्तार को बड़ी भूमिका निभाने की आवश्यकता है। परंपरागत रूप से किसानों तक जानकारियाँ पहुँचाने के लिए भारत सरकार द्वारा टेलीविजन और रेडियो (कृषि दर्शन जैसे टीवी शोज) का प्रयोग किया जाता रहा है, लेकिन अब इसे मोबाइल की नवीनताओं की ओर निर्देशित करने की आवश्यकता है। मौसम की भविष्यवाणी, नए बीजों की जानकारी, न्यूनतम समर्थन मूल्य संबंधी जानकारी और उन्नत कृषि पद्धतियों पर सामान्य सलाह आदि को मोबाइल फोन के जरिए किसानों तक पहुँचाया जा सकता है।

मामले का अध्ययन

वर्ष 2014 में आर्केडिया बायोसाइन्स इंक. और महाराष्ट्र हाइब्रिड सीड्स कंपनी लिमिटेड (मैहिको) ने मिलकर चालव के लिए लवण सहिष्णु तकनीक के विकास करने की घोषणा की। आर्केडिया का लवण सहिष्णु यानी सॉल्ट टॉलरेन्स (एसटी) तकनीक से लवणयुक्त जल (खारा पानी) और मिट्टी में भी पौधे अधिक पैदावार देते हैं। मैहिको ने एसटी तकनीक का समावेष करके चालव की किस्मों का प्रदर्शन किया है। इसमें पौधे के विकास और पैदावार जैसे प्रमुख मानकों पर अच्छी वृद्धि देखी गई है। इस विकास का फायदा अनाज उत्पादन के लिए उपलब्ध रकबे के विस्तार में और स्वच्छ जल की आवश्यकता में कमी के रूप में मिलेगा।

उपसंहार

भारत ने खाद्य सुरक्षा, 8 प्रतिशत जीडीपी वृद्धि दर और ग्रामीण आय में वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया है। यह लक्ष्य उच्चतर कृषि वृद्धि दर के बिना हासिल नहीं हो सकती है जो विगत पाँच वर्षों में 4.1 प्रतिशत पर रही है।

2004–05 से 2011–12 के बीच कृषि में पहली बार श्रमबल में कमी की घटना हुई थी जब इसकी कुल संख्या में लगातार वृद्धि के बावजूद 30.57 मिलिमयन की गिरावट दर्ज की गई। वैकल्पिक क्षेत्रों में उच्चतर पारिश्रमिक और अवसरों में बढ़ोतरी के कारण खेती से श्रमबल का पलायन हुआ। इसके चलते श्रमिकों की कमी, मजदूरी में वृद्धि और आगे चलकर खेती की लागत में बढ़ोतरी जैसे परिणाम सामने आए। मनरेगा जैसी सरकारी योजनाओं से श्रम पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और इस दिशा में तत्काल नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

यदि श्रमिक आवश्यकता कम करने के पर्याप्त उपाय नहीं किए गए तो खेतों की उत्पादकता प्रभावित हो सकती है और पैदावार की कीमतों पर इसके उत्तरोत्तर उर्ध्वगामी प्रभाव हो सकते हैं। इस समस्या का सामना करने वाले अधिकांश देशों में समाधान के लिए परंपरागत खेती पद्धतियों के स्थान पर व्यापक स्तरीय प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया गया है। भारत को भी शीघ्र ही इसे अपनाना होगा।

किसानों, उद्योगों और सरकार जैसे प्रमुख हिस्सेदारों को श्रम अल्पता की समस्या के समाधान हेतु पर्याप्त कारवाई करनी चाहिए। कृषि की तुलना में भारतीय श्रमिकों की उत्पादकता उद्योग में 4 गुना और सेवा क्षेत्र में 6 गुना ज्यादा है। कृषि में श्रमिक आवश्यकता कम करने के लिए निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाना चाहिए :

निवेश संबंधी कारक :

- तात्कालिक प्रभावः मानव श्रम की आवश्यकता कम करने की क्षमता वाली तकनीकें अपनाई जायें जैसे कि मशीनीकरण, श्रम घटाने वाली बीज प्रौद्योगिकी का प्रयोग और वनस्पतिनाशकों का प्रयोग।
- दीर्घकालिक प्रभावः बीज प्रौद्योगिकी, गहन खेती तकनीक और अनुवर्ती फसल तकनीक में अनुसंधान निर्देशित सुधारों के द्वारा खेती से मिलने वाले रिटर्न में वृद्धि।

उत्पादन संबंधी कारकः

- ठेकेदारी खेती, कृषि सहकारिता और कृषक इक्विटी ढाँचे के जरिए कृषि–व्यवसायों के साथ लिंकेज को मजबूत बनाना।

कृषि को उत्पादक और लाभकारी बनाने की दिशा में राज्य सरकार और केन्द्र सरकार अनेक पदलकदमी आरंभ कर सकती हैं।

राज्य सरकार :

- भूमि पट्टा बाजार को मुक्त करनाः भूमि पट्टा बाजार काश्तकारी (बटाईदारी) कानून के नियमों से बंधा हुआ है जिसके कारण जोत की चकबंदी में रूकावट है। यह सुनिश्चित करना कि भूस्वामी को भूमि पट्टा देने की प्रक्रिया में अपनी जमीन से बेदखल नहीं होना पड़े और यह भी कि पट्टाधारी का स्थायी काश्तकारी दावा नहीं रहे; पट्टे की अवधि को 10–15 वर्षों तक लंबा और पट्टे वाली जमीन के आकार पर सीमा हटाना और इसकी सुनिश्चित व्यवस्था कि पट्टे की अवधि समाप्त होने पर जमीन स्वतः किसान/भूस्वामि के अधिकार में आ जाए आदि कुछ विचारणीय सुझाव हैं।
- कस्टम हायरिंग ढाँचाः हालाँकि, भारत में कतिपय कृषि मशीनों की कस्टम हायरिंग व्यवस्था प्रचलित है, तथापि वर्तमान स्थिति में यह काफी असंगठित और छिटपुट अवस्था में है। कस्टम हायरिंग पद्धतियों को राज्य सरकारों द्वारा मुस्तैदी से लागू किया जा सकता है जिससे कि किसानों को प्रति इस्तेमाल के हिसाब से किराए पर कृषि मशीनें उपलब्ध हो सकें। इससे किसानों की पूँजी लागत में राहत मिलती है और साथ ही उन्हें खेती को मशीनीकृत करने का अवसर मिलता है।
- एपीएमसी में सुधार : आदर्ष एपीएमसी अधिनियम 2003 में निजी व्यापार को बढ़ाने के अनेक प्रावधान हैं लेकिन उन प्रावधानों को लागू कराने में अभी भी राज्य सरकारों को बड़ी भूमिका निभानी है। राज्य सरकार बिचौलियों की भूमिका कम करके किसानों से सीधे उपभोक्ताओं को खेतिहर पैदावार की बिक्री को सरल बना सकती है।

केन्द्र सरकार :

- मनरेगा में सुधार : हमारा सुझाव है कि ग्राम पंचायतों द्वारा मौसमी समय–सारणी लागू की जाए ताकि भूमिहीन मजदूरों को मनरेगा के तहत और खेतों में पर्याप्त समय मिल सके। साथ ही मनरेगा की कार्य–सूची में निराई, सिंचाई, बुवाई और फसल कटाई जैसे कतिपय कृषिक कार्यों को शामिल करके विशिष्ट फसल संबंधी कार्यों के लिए श्रमिक उपलब्ध कराए। इससे बढ़ती मजदूरी दर से परेशान किसानों को थोड़ी राहत मिलेगी और भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को रोजगार भी
- अनुसंधान में निवेश : भारत में कृषि अनुसंधान पर होने वाला खर्च उप–सहारा अफ्रिका के खर्च से कम है। केन्द्र सरकार अलग–अलग अनुसंधान संस्थानों के बीच समन्वय बढ़ाकर, विस्तार सेवाओं से किसानों को जोड़कर और निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाकर कृषिक अनुसंधान में तेजी ला सकती है।

परिशिष्ट

कृषि में 2019–20 तक श्रमबल में कमी का अनुमान

	2005.06	2011.12	सीएजीआर	2019.20	अनुमानित सीएजीआर
जनसंख्या	1098	1210	1.6 प्र.	1345	1.2 प्र.
श्रमबल की संख्या	453	467	0.5 प्र.	498	0.8 प्र.
श्रमबल–जनसंख्या अनुपात	41 प्र.	38.6 प्र.		37 प्र.	
कृशि में रोजगार	**263**	**228**	**.2.3** प्र.	**205**	**–1.3**प्र.
द्वितीयक क्षेत्र में रोजगार	85	111	4.5 प्र.	138	2.8 प्र.
तृतीयक क्षेत्र में रोजगार	105	128	3.3 प्र.	155	2.4.प्र.
जीडीपी में वृद्धि		8.3 प्र.		5.3 प्र.	प्रस्तावित
कृषिक जीडीपी में वृद्धि		3.8 प्र.		3 प्र.	प्रस्तावित
औद्योगिक (द्वितीयक) जीडीपी में वृद्धि		8.0 प्र.		4.9 प्र.	प्रस्तावित
सेवा क्षेत्र जीडीपी में वृद्धि		9.8		7.1 प्र.	प्रस्तावित
2020 तक खेतिहर श्रमबल में कमी	**23**				

स्रोत : योजना आयोग, आर्थिक आसूचना इकाई, केपीएमजी का विश्लेषण